- पंचम अध्याय -

- भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना -

अध्याय - पंचम

"भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना "

भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति घृणा एवं रोष, क्रान्ति की भावना, मान्वतावाद-विश्वमानवतावाद, सामाजिक जीवन का यथार्थ, रूढि विरोध, नारी शोषण, साम्प्रदायिक भेदाभेद, नवजागणर की चेतना, संगठन शक्तिपर विश्वास, साम्यवाद का समर्थन, प्रजातंत्र एवं सरकारी नीति पर व्यंग आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है। भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में चित्रांकित इन प्रवृत्तियों में ही प्रगतिवादी चेतना के बीज बोये हुअे लक्षित होते हैं। अतः हमने प्रस्तुत अध्याय में इन प्रवृत्तियों में ही प्रगतिवादी चेतना की तलाश करने का प्रयत्न किया है।

मजदूरों के प्रति सहानुभूति :-

प्रगतिवादी उपन्यासकारों में मजदूरों, पीडितों एवं शोषितों के बारे में सहानुभूति के दर्शन होते हैं। ये उपन्यासकार कृषकों, मजदूरों, सर्वहाराओं के हिमायती लगते हैं। आज के निर्मम शोषण की चक्की के पाटों में पीसनेवाले मजदूरों, किसानों एवं पीडितों की दशा का प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने सहानुभूतिपूर्ण कारूणिक चित्रण किया है। अधिकांश प्रगतिवादी उपन्यासों में यही दृष्य देखने को मिलते हैं जिसमें सांसारिक सुखों से वंचित शोषित मजदूर-सर्वहारा वर्ग के प्रति करूणा एवं सहानुभूति प्रकट की है। उनकी दिन दशाओं पर आंसू बहाये हैं। प्रगतिवादी उपन्यासकार मजदूरों को सभी सुखों के उपकरणों का सृष्टा मानते हैं परंतु वह स्वयं सुख से वंचित रहता है। मजदूर अन्नदाता होकर भी स्वयं भूखा है। भारत का मजदूर और किसान हमेशा दरिद्री नारायण ही रहता है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों में केवल मजदूरों के प्रति सहानुभूति ही प्रकट नहीं की है बल्कि उन्हें अपने हकों और कर्तव्यों के प्रति जागृत करके क्रांति के लिए उकसाने का प्रयत्न भी किया है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यासों में उपर्युक्त सभी बातों के, तथ्यों के दर्शन होते हैं।

भैरवजी के उपन्यास "मशाल" 1951 में भैरवप्रसाद गुप्तजी ने श्रमिक वर्ग के संघर्ष का सैध्दांतिक स्तर पर चित्रण करके उनके प्रति सहानुभूति दर्शायी है। "मशाल" भैरवप्रसाद गुप्तजी का

SARDAR PATEL UNIVERSITY LIBRARY

प्रगतिशील परंपरा का भी पहला उपन्यास कहा जा सकता है, जिसमें सर्वहारा के वर्गीय-संघर्ष को पहली बार विस्तृत साम्यवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्णता के साथ चित्रित किया है। इस वर्गीय चेतना को सन 1938 से 1947 तक की अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर होनेवाली राजनीतिक उथल-पुथल तथा अनेक परिवर्तनों से सम्बल प्राप्त होता हैं, जिनका चित्रण उपन्यास में प्रासंगिक रूप से उठाया है।

कानपुर के कपडा मिल के मजदूरों के प्रति सहानुभूति दिखाकर लेखक ने मिल मजदूरों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास के मुख्य प्रतिपाद्य का प्रारंभ नरेन के श्रमिकों के बीच पहुँचने के उपरांत ही होता है। गरीबी, साहसिकता, पारस्परिक संगठन और सहानुभूति की भावना से युक्त साम्यवादी रंग में रंगे श्रमिक जीवन के अनेक चित्र उपन्यास में दिखायी देते हैं, जिससे उपन्यास सजीव हो उठता है। साम्यवादी चेतना से सम्पृक्त शकूर और मंजूर आदि के विचारों में उपन्यासकार का उद्देश्य प्रतिध्वनित होता है।

उपन्यास का नायक नरेन प्रगतिवादी विचारों का युवक है। बचपन से ही उसके मन में रूढिग्रस्त आचार-विचार के विरूध्द विद्रोह उठता है। आर्थिक विषमता के कारण नरेन को अपनी माँ और स्नेहशीला भाभी के सात्विक स्नेह के बंधन को तोडकर भागना पडता है। नरेन घर से भागकर देश की स्वाधीनता की लडाई का एक सेनानी बन जाता है। जब वह घर वापस लौटता है तब न उसे माँ मिलती है न भाभी। दु:खी नरेन अपने एक मित्र के साथ कानपुर आ जाता है और यहीं से नरेन की प्रगति की शुरूआत होती जाती है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने हमेशा सर्वहारा व्यक्तियों की वकालत की है। कहीं संवेदना के स्तर पर तो कहीं संघर्ष के स्तर पर। गुप्तजी सामान्य जनता के लेखक हैं। उनके उपन्यास के सभी पात्र शकूर, मंजूर, नरेन प्रगतिवादी विचारों के वाहक हैं। कानपुर के कपडा मिल में काम करनेवाले श्रमिकों का विविध रूप से शोषण किया जाता है। उनके कामों के घंटों में वृध्दि करना, नियत समय से पहले बीस-पचीस मिनट हर पाली शुरू करना, हर पाली को बीस-पचीस मिनट के बाद बंद करना आदि विविध शोषण के आयामों का प्रयोग मिल-मालिक करते हैं। मजदूर इस पध्दति का इन्कार करते हैं और वर्ग-संघर्ष की, अपने हक की लडाई शुरू कर देते हैं। साम्यवाद की चेतना से सम्पृक्त मंजूर शकूर से कहता है - "मजदूर क्या है, उसके काम की किमत क्या है, उसका संगठन क्या है, उसके संगठन का मक्सद क्या है? जैसे-जैसे ये बातें मेरी समझ में आती गयीं, मुझमें एक नयी जिन्दगी, एक नया जोश, एक नयी हिम्मत, एक नया बलबला, एक नयी ताकत, एक नयी लडाई, एक नया मक्सद करवटें लेने लगा और मैंने मजदूर होकर अपने को एक बदला हुआ इन्सान पाया।"[1] यहाँ यह स्पष्ट होता है कि कानपुर के कपडा मिल के मजदूर अपने हकों के लिए लडने को आमदा हुअे हैं।

नरेन, शकूर, सकीना, मंजूर आदि सभी पात्र मजदूर हैं और इन पात्रों के माध्यम से गुप्तजी ने मजदूरों के प्रति सहानुभूति दिखाकर उनका शोषण करनेवाली शक्तियों का विरोध किया है। उन्हें अपने हक और कर्तव्य के प्रति चेतित बनाकर प्रगतिवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा के मतानुसार - " "मशाल" में न्याय और अधिकार की मशाल को प्रज्वलित करने में समर्थ हो सका है।"[3] इस उपन्यास का मूल स्वर मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं साम्यवादी चेतना को स्वर देना ही है। इस संपूर्ण उपन्यास की रचना परिधि समाजवाद के कसौटी पर पूरी उतरती है।

"गंगामैया" ।953 में गुप्तजी ने हमेशा किसानों और मजदूरों का ही पक्ष लिया है। उनके सभी उपन्यासों में किसान और मजदूरों के प्रति सहानुभूतिपूर्वक चित्रण मिलता है। "गंगामैया" का नायक मटरूसिंह स्वच्छ स्वभाव का मानवीय चेतना से सम्पन्न रजपूत पहलवान है। मटरू को विवाह के पहले जीवनोपार्जन की समस्या नही थी मगर जब उसकी शादी हो गयी तब उसके सामने आजिविका की समस्या खडी हो गयी और उसने गंगामैया की कुवारी मिट्टी पर खेती करना शुरू कर दिया वह अकेले ही खेती नही करता मगर सभी किसानों को भी चेतित करता है और अपने हक और कर्तव्य के लिए लडना सिखाता है। मटरूसिंह प्रगतिशील जननायक के रूप में हमारे सामने आता है। वह किसानों को समझाता है - "इस जमीन पर जमींदार का कोई हक नहीं है - गंगामैया की छोडी जमीन पर जमींदारों का क्या हक पहुँचता है कि वे उस पर सलामी और लगान ले। जिसको जोतना-बोना हो, वह खुशी से आये और उसी की तरह जंगल साफ करके जोते-बोए। जमींदारों से बंदोबस्त करने की क्या जरूरत है? वे क्यों एक नयी रीति निकाल रहे हैं और जमींदारों का मन बिगाड रहे हैं....।"[4] यहाँ जमींदारी पध्दति उन्मूलन करने का प्रयास किया गया है। इतना ही नहीं झाऊँ और सरकंडे को बिना बताये काट लेता हैं और किसानों द्वारा जमींदारों को इसका समाचार भी भेज देता है। जमींदार इस बात को लेकर गुस्से से लाल हो जाते हैं मगर मटरू के आगे और सिधी तरह से वे मटरू को छोड नहीं सकते थे।

यहाँ मटरू किसानों का संगठन करके जमींदारों के खिलाफ आंदोलन खडा कर देता है। किसानों की दयनीय हालत पर तरस खाकर उनकी स्थितियों में परिवर्तन करने के लिए दीयर पर खेती करने के लिए उन्हें जमींदार-किसान वर्ग-संघर्ष का निर्माण कर देता है। भैरवजी ने किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट करके अंत में उनकी विजय दिखायी है। "भैरवजी ने सामंती, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से उद्‌भूत नारी की घुटन, विवशता और शोषण के विरूध्द संघर्ष की सफलता दिखाकर समाजवादी शक्तियों की विजय दिखलायी है।"[5] यहाँ भैरवजी की प्रगतिवादी चेतना स्पष्ट प्रतीत होती है।

"सती मैया का चौरा" ।959 में भैरवजी ने भारत के ग्रामीण जनजीवन में आर्थिक ढाँचे का आधार कृषि को माना है। कृषि में लगे किसान और मजदूरों की मानसिकता में विद्रोही वृत्ति को

जन्म देनेवाले दो कारण उन्होंने प्रस्तुत किये है। एक उनका पारिश्रमिक और दूसरा उनके साथ किया जानेवाला व्यवहार। भैरवजी ने बडी ही अनुभुत्यात्मक सच्चाई से ग्रामजीवन के इस वर्ग की अपदाओं और उनके दु:खदर्द को समझाया है। साथ-ही-साथ मालिक-मजदूर संघर्ष को उठाकर मजदूरों के प्रति सहानुभूति दिखाई है।

"असंतुलित औद्योगिक नीति के फलस्वरूप समाज पर पूंजीपतियों का शिकंजा कसता गया जिसने अनेक समस्याओं को जन्म दिया। स्वातंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में अर्थ पर आधारित पूंजीवादी समाज और पूंजी पर आधारित सामंतवादी प्रवृत्तियों का विरोध मिलता है। यह विरोध संघर्ष के माध्यम से और पात्रों के स्वतंत्र वक्तव्य में देखा जा सकता है।"[6]

भैरवजी के "सती मैया का चौरा" में मुन्नी श्रमप्रधान वर्गहीन समाज का समर्थन करते हुअे कहता है - "उत्पादन के सभी साधनों पर राष्ट्र अपना अधिकार करके पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों तथा उपभोक्ताओं का शोषण समाप्त कर दे, तो गरीबी अमीर का सवाल ही क्यों पैदा हो, और समाज में व्यक्ति की मान-मर्यादा का माप क्यों पैदा हो।"[7] लेखकीय संवेदना मुन्नी से ही जुडी है। लेखक की कटुता सामंतीय प्रवृत्तियों के खिलाफ है।

प्रस्तुत उपन्यास का जमुना किसान अत्यधिक दबाव के कारण जमीदार की देखरेख करनेवाले बाबू साहब से कहता है - "हमारा लडका मर गया है.... और यह..... न हमारा ठाकुर है न मालिक, हमारा पानी उतर रहा है। बडा आया जमीदार के सर पर मूतनेवाला।"[8]

निष्कर्ष :- यहाँ यह स्पष्ट होता है कि भैरवप्रसाद गुप्तजी ने अपने "मशाल", "गंगामैया", "सती मैया का चौरा" आदि उपन्यासों में मजदूरों के प्रति सहानुभूति दर्शाकर वर्ग-संघर्ष का निर्माण किया है। इस वर्ग संघर्ष में उन्होंने अंत में मजदूरों की विजय दिखाई है। मजदूरों के शोषण पर गहरा दु:ख प्रकट करके उन्हें अपने न्याय हक्कों के बारे में जागृत करने का प्रयत्न किया है।

शोषकों के प्रति घृणा और रोष :-

प्रगतिवादी उपन्यासों का मूल स्वर शोषित और शोषक वर्ग में विद्यमान नजर आता है। इन उपन्यासों में शोषित और शोषकों को दो वर्गो में बांटकर उनकी अभिव्यक्ति की है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने शोषित वर्ग को अधिक महत्व देकर शोषक वर्ग के प्रति घृणा, वितृष्णा दिखाकर उनके प्रति व्यंग्य भी किया है।

प्रगतिवादी उपन्यासाकारों ने संसार में शोषक और शोषित आदि दो जातियों को ही माना है। व्यापारी, जमीदार, उद्योगपति आदि शोषक हैं जो हमेशा पूंजीपति व्यवस्था बनाये रखने के आदि नजर आते हैं। प्रगतिवादी उपन्यास लेखकों के मतानुसार जब तक यह पूंजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी तब

तक शोषण को उखाडकर फेंकना असंभव होगा। प्रगतिवादी ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था को उखाडकर कुचल देने के पक्षधर हैं। वे सामाजिक जीवन में अर्थगत विषमता नही देखना चाहते हैं। वे इस व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश दिखाकर शोषकों के खिलाफ लडाई लडना चाहते हैं। संघर्ष शुरू करना चाहते हैं। भैरवजी के सभी आलोच्य उपन्यास इसी कसौटी पर खरे उतरते हैं। भैरवजी के मतानुसार सामाजिक विषमता का मूल कारण विषम - अर्थ व्यवस्था है। पूंजी का संग्रह शोषण की प्रकृति पर आधारित है। मजदूरों-किसानों के श्रम से उत्पन्न पूंजी में उनको पूरा हिस्सा नहीं मिलता। शोषक तथा साधनों के अधिकारी उत्पादन पर अधिकार जताते हैं और मजदूर शोषित बन जाता है। यह शोषण धर्म और समाज को भी प्रेरित करता है। शोषित, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों स्तरों पर पीछे पड जाते हैं। शोषक पूंजी के बल पर दुर्बलों का शोषण करते हैं। अपने आलोच्य उपन्यासों में अपने यही विचार भैरवजी ने व्यक्त किये हैं।

भैरवजी के "मशाल" 1951 में गुप्तजी ने समय-समय पर पूंजीवादी, महाजन, मिल-मालिक आदि शोषकों के प्रति अपने पात्रों के माध्यम से घृणा और रोष प्रकट करवाया है। इस उपन्यास में कानपुर के कपडा मिलों के मालिक शोषक के रूप में तो मजदूर शोषित के रूप में चित्रित किये गये हैं। गुप्तजी के सभी पात्र मार्क्सवादी विचारों से संपृक्त रहे है और समय-समय पर वे अपने घृणा, रोष को प्रकट करते हैं। मजदूर दिनभर मेहनत करते हैं अब वे चेतित हो उठे हैं, वे अपना भला-बुरा समझने लगे हैं, वे पूंजिपतियों का, शोषकों का विरोध करके अपने हकों के लिए लडते हैं इसका उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। मजदूरों के साथ आजतक हमेशा अन्याय होता आया है मगर मजदूर अब जान गये हैं वे शोषकों के खिलाफ आंवाज उठाने में भी नहीं हिचकिचाते। शकूर सकीना से कहता है - "साहब लोग हजार रूपया महिना पाते हैं, लेकिन काम दो आने का भी नहीं करते, लेकिन हम मजदूर लोग आठ-आठ घंटे छाती फाडकर काम करते हैं लेकिन हमें पेटभर खाना भी नहीं मिल पाता।"[8] समाज की इस अन्यायी प्रवृत्ति का और आर्थिक विषमता का कारण विषद करके सकीना अपने भाग्य को कोसती है। शकूर उसे समझाता है कि भाग्य को कोसना गलत है, वर्ग-संघर्ष की लडाई लडे बगैर किस्मत नहीं बदल सकती है। शकूर सकीना से कहता है - "नहीं, सकीना इसमें हमारी किस्मत का दोष नहीं है। दोष इस राज का है, जिसमें मेहनतकश भूखों मरते हैं, और हुकूमत करनेवाले सरमायेदार और उनके एजेण्ट बैठे-बैठे मजे उडाते हैं। पर सकीना अब जमाना बदल गया है।"[9] मजदूरों की जागृति की तरफ यहाँ इशारा दिया गया है।

सामाजिक वैषम्य से युक्त आर्थिक विपन्नता के कारण ही सकीना को शारीरिक - मानसिक यंत्रणाओं का शिकार बनना पडा। सकीना के मन में सामाजिक वैषम्य के प्रति विद्रोह, घृणा की

भावना जागृत हो जाती है। समाचारपत्र बेचनेवाले से हिटलर के हार जाने और रूस के जीत जाने का समाचार सुनकर अपना रोष प्रकट करती हुअी सकीना कहती है - "मेरे बहादुर भाईयों की जीत मेरी जीत है। मेरी जिन्दगी की जीत है। अब मुझे एक नयी जिन्दगी मिलेगी। हर मजदूर को एक नयी जिन्दगी मिलेगी।"[10] यहाँ सकीना शोषकों के प्रति रोष और घृणा स्पष्ट कर रही है।

भैरवजी के "गंगामैया" 1953 में जननायक मटरूसिंह साम्यवादी चेतना से प्रेरित होकर किसानों में जागृति लाने का काम करता है। वह जमींदारों के प्रति अपनी घृणा और रोष को जताते हुअे किसानों को सत्यता का परिचय दिला ता है। मटरू सभी किसानों को गंगामैया द्वारा छोडी गअी मिट्टी पर खेती करने के लिए बाध्य करता हैं उन्हें समझाता है कि वे जमींदार को सलामी और लगान न दें। मटरू ने कठोर परिश्रम के साथ जमीन को अच्छी तरह से उपजाऊ बनवाया है। जमींदार मटरू को सीधे तौर पर छेड नही सकते। वह "दीयर" में जंगली शेर के समान रहात था, जवार में उसकी धाक थी उसके पास सैकडों लठैत थे इसलिए जमींदार मटरू को अपनी ओर खिंचना चाहते हैं वह मटरू को खरीदना चाहते हैं और इसलिए अपने करिन्दे को जब भेजते हैं तब मटरू करिंदे से स्पष्ट रूप से कहता है - "मटरू किसी जमींदार का कोई आसामी नहीं है। जिसे गरज हो, वहीं उससे आकर मिले।"[11] जब जमींदारों को सफलता नहीं मिली तो मटरू जमींदार के करिंदे से साफ कह देता है - "कानून-कायदे की बात वह घर बैठे बघारा करें। मुझे कोई परवाह नहीं। मैं जमींदारों ने अगर इधर उधर आँख उठाई तो उनकी आँखे फोड दूँगा। जो चाहे आए, मेहनत करे, कमाए, खाए। मैं तो यही जानता हूँ कि यह धरती गंगामैया की है।"[12] मटरू एक सच्चा और इमानदार आदमी है जो जमींदार की बातों में नही फंसता जिसका गहरा परिणाम जमींदारों पर होता है। वे मटरू को पुलिस की मदद से डाके के आरोप में पकडवाते हैं। पुलिस तथा राजनीतिक अधिकरियों के साथ मिलकर जमींदारों और मटरू और उसके किसानों में संघर्ष छिड जाता है। मटरू स्वयं कहता है - "हक और न्याय के सामने किसी को मैंने कुछ नही समझा।" यहाँ भैरवजी ने जमींदारों के प्रति रोष प्रकट करके उनकी घृणा की है और किसानों की संगठन शक्ति पर विश्वास करके वर्ग-संघर्ष में उनकी जित दिखाई है।

गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" 1959 में जमींदारों के अत्याचार का चित्रण किया है। गाँव के जमींदार सुगंधराय किसानों से लाठी और जूतों के बल से हरवर्ष दुगना लगान वसूल करते हैं वे स्पष्ट रूप से अपने आदमियों से कहते हैं - "आज से लगान की दर डयोढी की जा रही है - अगर किसी ने किसी तरह उज्र किया तो उसका सिर तोड दिया जायेगा।"[13] सुगंधराय के इस निर्णय के विरूध्द गाँव के लोग मिलकर संघर्ष करते हैं इस वर्ग-हित की लडाई का नेतृत्व गुलाम हैदर करता है। संघर्ष में सुगंधराय पराजित हो जाता है और गाँव अपनी बेटी की दहेज में दे देता है। परिणाम स्वरूप

गाँव में फिरसे संघर्ष छिड जाता है गुलाम हैदर एक बार फिर गाँव वालों को अपने अधिकार के लिए, संघर्ष के लिए एकत्रित करके अपना रोष प्रकट करते हुअे काजी से कहता है - "यह गाँव हमारा है - इसे बेचने या खरीदने का हक किसी को नहीं है। हम एक कौडी लगान किसी को नही देंगे।"[14]

पुनः किसान और जमींदारों में ठन जाती है। इस संघर्ष में अभिमन्यु की भाँति गुलाम हैदर की मौत होती है। जमींदार इस युध्द में पराजित लोगों का शोषण और तेजी से करते हैं।

"आग और आंसू" 1983 में बडे सरकार शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। गाँव में सभी प्रकार के लोग रहते हैं मगर गाँव के कुछ गीने-चुने लोग संपूर्ण गाँव का शोषण करते हैं। संपूर्ण कृषक समाज का नेतृत्व करते हुअे चतुरी अपने मन में जो रोष है, उसे इस तरह स्पष्ट करता है - "जिस पानी से रात भर (बडे सरकार को) तरी मिलेगी उसमें हमारा कितना पसीना मिला हुआ है।"[15] गुप्तजी ने बडे सरकार और कांग्रेस कार्यकर्ता शिवप्रसाद की कोठी का वर्णन इस प्रकार किया है - "ये ऐसी लगती है, जैसे मिट्टी की टूटी-फूटी सैकडों कब्रों के बीच दो पत्थर ऊँचे स्मारक हों।"[16] ये गाँव के महल कुछ गीने-चुने बडे महाजन को छोडकर जातियों और स्तरों के लोगों के रक्त पीसने पर नियत थे।

निष्कर्ष :- भैरवजी ने "मशाल", "गंगामैया", "सती मैया का चौरा", "आग और आंसू" इन उपन्यासों के माध्यम से मिल-मालिक, जमींदार, पूंजीपति आदि शोषकों के प्रति घृणा और रोष प्रकट किया है। ये खूनचूस लोग निरंतर मजदूरों का शोषण करके जोंक की भांति इनका शोषण करते हैं। गुप्तजी ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से इन लोगों के खिलाफ रोष प्रकट करके उनके शोषण के विविध आयामों के प्रति मजदूरों में जागृति पैदा की है।

क्रान्ति की भावना :-

"साम्यवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा के लिए सामंतवादी परंपराओं का समूल नाश आवश्यक है। केवल परंपराओं का नाश ही पर्याप्त नहीं बल्कि शोषक वर्ग का सर्वथा ध्वंस वांछनीय है।"[17] भैरवप्रसाद गुप्तजी प्रगतिवादी उपन्यास लेखक होने के नाते अपने उपन्यासों में क्रांति के उन प्रलयंकारी भैरवी स्वरों का अलहान करते हैं वे जीर्ण-शीर्ण रूढियाँ एवं परंपराएँ सदा के लिए उध्वस्त कर देना चाहते हैं। भैरवजी समझौते या हृदयपरिवर्तन की नीति पर विश्वास नहीं करते हैं। वे शोषितों के जख्मों पर मरहमपट्टी लगाकर उनके विद्रोह की क्रोधाग्नि को दबाना नहीं चाहते बल्कि शोषितों के दुःखों को जडमूल से उखाडना चाहते हैं। इन्हें क्रान्ति पर विश्वास है। आंदोलन के सहारे वे क्रान्ति का निर्माण करना चाहते हैं। अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करना चाहते हैं। भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति लक्षित होती है।

भैरवजी के मतानुसार बीना क्रान्ति के कुछ भी हासिल नहीं होता। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पडता है। क्रान्ति करके अन्याय का अत्याचार का मुकाबला करना पडता है। संघर्ष के जरिये ही हम हमारे ध्येय को पा सकते हैं। प्रगतिवादी पात्र क्रांति के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। वे अगर सही ढंग से अपने हक को नहीं पा सकते तो क्रांति के माध्यम से उसे हासिल करने में अपनी जीत मानते हैं।

भैरवजी के उपन्यास "मशाल" 1951 में सभी प्राप्त करते रहते हैं। मिल-मालिक मजदूरों से मुफत में काम लेना चाहते हैं। दो पालियों में एक घंटे का अंतर रखा जाता है। आठ-आठ घंटे काम करने के उपरांत तनख्वाह में वृध्दी नहीं होती और इन सब कारणों को लेकर मजदूर चेतित उठते हैं, संघर्ष करते हैं। मालिक-मजदूरों के पेट पर लात मारना चाहते हैं और तालाबन्दी का ऐलान किया जाता है। आज का मजदूर जाग उठा है। कामरेड युसुफ कहता है - "कानपुर में मजदूर और मिल-मालिकों में ऐसा संघर्ष होगा, जो मजदूर-वर्ग के इतिहास में हमेशा अमर रहेगा।"[18] मिश्र धेनुक कहता है - "लाख तकलीफों के होते हुए भी संघर्ष में जुटे रहने में एक मजा आता है, अपने में ताकत बढती है, दिल और दिमाग मजबूत होता है क्योंकि वह मशीन बनाता है, मिल खडी करता है।"[19] यहाँ मजदूरों का उत्पादन व्यवस्था में महत्व प्रतिपादित किया है।

क्रांति के माध्यम से सबकुछ हासिल हो सकता है। संगठन, क्रांति के जरिये ही कानपुर के मजदूर अपने हमों के लिए लडते झगडते हैं। हडताल करते हैं, अपनी जान पर उतारू हो जाते हैं, पुलिसों की गोलियों के शिकार बनते हैं। यहाँ द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन होते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी एवं प्रगतिवादी उपन्यास लेखक हैं। वे गरीब, किसान, मजदूर के प्रति सहानुभूति तो जरूर प्रकट करते हैं परंतु केवल सहानुभूति दिखाकर ही चुप नहीं बैठते उन्हें संगठित करके उनके मन में क्रांति के बीज बोकर उन्हें वर्ग-संघर्ष के लिए बाध्य करते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "गंगामैया" 1953 में उपन्यास का प्रमुख पात्र मटरू जमींदारों के खिलाफ किसानों को संगठित करके क्रांति का निर्माण करता है। गोपी मटरू की सहायता से विधवा भाभी के साथ विवाह करके क्रांतिकारी कदम उठाता है। रूढि-परंपराओं के खिलाफ क्रांति करता है। बिलरा एक सामान्य नौकर होकर भी विधवा भाभी की स्थिति पर अपने क्रांतिकारी विचार प्रकट करते हुअे कहता है - "मेरी ही देखिए न। भैया भाभी को छोड गुजर गये तो भौजी का ब्याह मुझसे ही हो गया। मजे में जिन्दगी कट रही है। और आप ऊँची बिरादरी में क्या पैदा हुई कि आपकी जिन्दगी ही खराब हो गयी.... क्या कहूँ, मालकिन, मन में उठता तो है कि छोटे मालिक से अगर आपका ब्याह हो जाता...।"[20] यहाँ रूढि के खिलाफ क्रांति की भावना स्पष्ट होती है।

मटरू को बंदी बना देने पर क्रांतिकारी किसान आंदोलन को आगे बढाने का काम मटरू का साला पूजन करता है। वह मटरू से कहता है - "तुम्हारे साथी अपने खुन की आखिरी बूंद तक से इसकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुजरा जमाना फिर वापस नही आता, ऊसी तरह जमींदारों के उखडे पैर यहाँ फिर कभी जम न पायेंगे। हमारा जोर दिन-दिन बढता जा रहा है। हमारे साथी बढते जा रहे है। जमाना आगे बढ रहा है। नहीं, पाहुन वैसा कभी न होगा। यहाँ का हर किसान मटरू बनने की तमन्ना रखता है।"[21] अर्थात मटरू गोपी, बिलरा, पूजन आदि पात्रों में हमें क्रांतिकारी विचार देखने को मिलते हैं। विधवा भाभी प्रत्यक्ष रूप में क्रांति कर नहीं सकती परंतु गोपी से विवाह करके क्रांति के प्रवाह में जरूर शामिल हो सकती है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के "सती मैया का चौरा" 1953 में आजादी के पश्चात दलित, शोषित, पीडित मजदूरों एवं किसानों में क्रांतिकारी चेतना का निर्माण होने लगा, सामाजिक संरचना के लिए भारत के गाँवों में बसी अधिकांश जनता अपनी चेतना को वृध्दिंगत करने लगी है। गाँव के जमींदार सुगंधराय किसानों से लाठी और जूतों के बल पर हर वर्ष दुगनी लगान वसूल करता है। गाँव के सनस्त वर्ग, सम्प्रदाय तथा जातियाँ परस्पर मिलकर जमींदार के इस अन्याय के विरूध्द संघर्ष करती है। गुलाम हैदर अपने वर्ग-हित के लिए लडने को गाँव के किसानों का नेतृत्व करता है। संपूर्ण किसान एकत्र होकर इसका विरोध करते हैं जिसमें सुगंधराय पराजित हो जाता है। सुगंधराय जवार गाँव को अपनी लडकी के दहेज में देता है। परिणाम स्वरूप गाँव कई बार बेचा-खरिदा जाता है मगर गुलाम हैदर अपने हकों की ओर किसानों को चेतित करते हुअे काजी से कहता है - "यह गाँव हमारा है - इसे बेचने या खरीदने का हक किसी को नहीं।"[22]

पिअरी गाँव में रहनेवाले मन्ने और मुन्नी दोनों ही बचपन से ही क्रांतिकारी विचारों के हैं और आगे चलकर उनके यही विचार वृध्दिंगत होते हैं। मुन्नी के विचारों में संघर्ष में सफलता तभी मिल सकती है जब व्यक्ति अपना हाथ बढाकर दूसरे का हाथ थाम ले और आगे बढे। मन्ने और मुन्नी प्रगतिशील हैं, वे नये जमाने की करवट को पहचानते हैं। मन्ने के वैयक्तिक प्रभाव के कारण जुब्ली मियाँ जैसे कट्टर जमींदार सहकारी फार्म के लिए जमीन ही नहीं देते आर्थिक सहायता भी कर देते हैं ताकि ट्रैक्टर आ सके और खेती का काम सुचारू रूप से हो सके। विविध विरोधों के उपरांत मन्ने आश्वस्त है। मन्ने कहता है - "हमारा गाँव आँखें खोल चुका है। स्कूल-पंचायत - को ऑपरेटिव फारम - ग्रामोद्योग हर मंजिल पर जिन्दगी संवरती जायेगी - सरकार जो भी पंचायत को, गाँव को, फारम को, स्कूल को दे रही है उसे अफसरों और स्वार्थी लोगों और नेताओं के पंजों से छीन कर गाँव की भलाई और तरक्की के कामों में हम लोगों को लगाना है और सरकार से और अधिक सहायता माँगना

है।"[23] आगे चलकर मुन्नी कहता है - "मैं ऐसा नहीं समझता कि अलग-अलग गाँव अपनी यह लडाई अलग-अलग लडेंगे और उनका आपस में कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा। नहीं ऐसा नहीं होगा। चेतना गाँवों के किसानों को एक दूसरे के निकट लायेगी, उनका सम्बन्ध गहरा करेगी और वे मिलकर आपस में एका करके यह लडाई लडेंगे।"[24] यहाँ क्रांति की भावना स्पष्ट हो रही है।

प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तजी ने मन्ने और मुन्नी जो समाजवाद के आकांक्षी हैं, इनका चित्रण करके अपने प्रगतिवादी विचार हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं।

गुप्तजी ने "नौजवान" 1972 में विद्यार्थियों के मामले को उठाकर विश्वविद्यालयीन क्षेत्र में विद्यार्थी संगठन, विद्यार्थी हडताल, पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था आदि बातों पर प्रकाश डाला है। आज शिक्षा लेने का अधिकार संविधान के अनुसार सभी को है परंतु विश्वविद्यालय में प्रवेश देते समय तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों को प्रवेश नही मिल पाता है। विद्यार्थियों का प्रवेश अवरूध्द करके देश का विकास हम नहीं कर सकते ऐसी विद्यार्थियों की धारणा है। तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयीन क्षेत्र से हटना एक सरासार अन्याय है। संविधान के अनुसार यह अयोग्य है अतः विद्यार्थियों के ऊपर होनेवाले इस अन्याय को न्याय में परिवर्तित करने के लिए विद्यार्थी संगठन का निर्माण होता है। इस उपन्यास में योगेश सभी विद्यार्थियों का नेतृत्व करता है और पूंजीपति शिक्षा-व्यवस्था के खिलाफ क्रांति करना चाहता है।

"विद्यार्थी युनियन जिंदाबाद।"

विद्यार्थी एकता जिंदाबाद"

"हमारी माँगे पूरी हो"[25]

इस अन्यायी कानून को हटाने के लिए विद्यार्थी संगठित होकर विश्वविद्यालयीन पदाधिकारियों से बातचित करते हैं परंतु पदाधिकारियों की स्थिति देख कर विद्यार्थी हडताल का पैतरा अपनाते हैं। विद्यार्थियों की कोई मांग पूरी नहीं होती। आज देश के सभी विश्वविद्यालयों के स्तर पर अन्यायी, अत्याचारी कानुनों को हटाने के लिए विद्यार्थी और प्राध्यापकों का संगठन बढता जा रहा है। यहाँ साम्यवाद के लिए क्रांति का नारा प्रमुख बन बैठा है। पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था के प्रति क्रांति यहाँ लक्षित होती है।

आज भारत में पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था दिन-ब-दिन विकसित होती जा रही है। आज इंजिनिअरिंग, मेडिकल क्षेत्र में तो यह व्यवस्था अधिकाधिक विकसित होती जा रही है परिणाम स्वरूप सामान्य विद्यार्थियों को अनुदान के अभाव में उच्च शिक्षा के दरवाजे बंद हो जाते हैं और शिक्षा के क्षेत्र में केवल पूंजीपति छात्रों का बोलबाला शुरू होता है। यहाँ धर्मदेव के माध्यम से इस पूंजीवादी शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। योगेश के मतानुसार - "देश के नौजवानों ने अपनी जिन्दगी सँवारने के लिए जो आंदोलन छेडा है उसे ये अपनी बर्बर शक्ति से कुचल देंगे, ऐसा सोचना उनकी खाम

खयाली है यह लडाई जारी रहेगी और समय तक चलती रहेगी की जब तक की यह पूंजीवादी व्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती।'[26] योगेश के मतानुसार 'स्कूलों में, कालेजों में दफ्तरों में, कारखानों में, कचहरियों में, खेतों में, बाजारों में, सडकों पर.... यहाँ तक कि आपके अस्पतालों में भी पूंजीवाद का जाल कहाँ नहीं बिछा है।'[27] यहाँ लेखक ने पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था और अन्य पूंजीवादी माहोलों पर प्रकाश डालने का काम किया है। प्रगतिवादी लेखक पूंजीवाद के खिलाफ हमेशा के लिए क्रांति एवं विद्रोह करते हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने यहाँ पूंजीवादी शिक्षा प्रणाली का विरोध योगेश तथा विद्यार्थी हडताल के माध्यम से क्रांति का ऐलान किया है।

भैरवजी के 'आग और आंसू' 1982 में क्रांति की भावना को बढाने का काम किया है। बडे सरकार के हुकूम के खिलाफ है। बडे सरकार हर साल अपने मन से चाहे जितना लगान बढा देते हैं और गाँव की जनता पर पूरी तरह से राज करते हैं। गाँव में उनकी ही हुकूमत चलती है। वे असंख्य लोगों का हर प्रकार का शोषण करते हैं। यहाँ तक कि नारियाँ भी उनके नजरों से न छुट पाती हैं। उपन्यास में बांदियों के जीवन पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। बडे सरकार के इस शोषण और अन्याय, अत्याचार का गाँव के प्रगतिवादी चेतना से युक्त नौजवान चतुरी, रमेसर, नगेसर खुलकर विरोध करते हैं। गाँव का सशक्त पात्र रमेसर बडे सरकार के और महजनों के अचानक लगान तिगुना करने के विरोध में सब गाँववालों को संगठित करके उनको चेतित करते हुअे कहता है - 'जब भी गाँवदारी का कोई सवाल उठे, या किसी पर भी कोई जोर जुलुम हो, तो हमें चाहिए कि हम मिल-जुलकर बैठें, उस सवाल पर बातें करें, बहस करें और खूब सोच-समझकर कोई कदम उठायें। गाँवदारी के मामले में सब का बराबर का सम्बन्ध होता है, उसका भला-बुरा नतीजा.... सब एकजूट होकर उठ खडे हुए और पूरी ताकत से उस पहिये को ही पकडकर तोड डाले।'[28] रमेसर सब लोगों को चेतित करते हुअे कहता है - 'इतने आदमी किसी जालिम का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जायँ, तो कौन हमारा बाल बाका कर सकता है? लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए हममें से हर एक को कुछ-न-कुछ कुरबानी करनी पडेगी, तकलीफ उठानी पडेगी, खतरा मोल लेना पडेगा। याद रखिए कि दुनिया में कोई बडा काम खतरा उठाये बिना नहीं होता, और मैं कहना चाहता हूँ कि हमारा 'एका' आज सबसे बडा काम है क्योंकि इसी एके से हम दुष्मनों को हरा सकते हैं, सभी जुलुम खतम कर सकते हैं।'[29] उपन्यास के चतुरी, नगेसर, रमेसर, लल्लन आदि सभी पात्र प्रगतिवादी चेतना से युक्त है। इन पात्रों में प्रगतिवादी चेतना को भरकर गुप्तजी ने उन्हें क्रांति करने के लिए आमदा किया है।

निष्कर्ष :- भैरवजी ने 'मशाल', 'गंगामैया', 'सती मैया का चौरा', 'नौजवान', 'आग और आंसू'

आदि उपन्यासोंमें शोषक शक्तियों के खिलाफ वर्ग-संघर्ष का निर्माण करके क्रांतिके लिए ऐलान किया है। शोषक शक्ति क्रांति के बिना पराभूत नहीं हो सकती यह सत्य भी यहाँ चित्रित किया है। गरीब, मजदूर, पीडितों में चेतना-जागृति करके न्याय हक्क के लिए क्रांति करने को उकसाया है।

मानवतावाद-विश्वमानवतावाद :

प्रगतिवादी उपन्यास लेखक देश के भिख मंगों, किसानों, मजदूरों, वेश्याओं और विधवाओंका उध्दार करना चाहते हैं। ये उपन्यास लेखक अपनी मातृभूमि के लिए लिखते हैं। समस्त मानवता का उध्दार उनका अंतिम लक्ष रहता है। इन उपन्यासकारों को संसार के समस्त पीडितों से प्यार एवं सहानुभूति रहती है। उन्हें संसार के किसी भी कोने में होनेवाले अत्याचारों के प्रति शेष है। इन लोगों के लिए हिन्दू, मुस्लमान सब मानव के नाते बराबर हैं। प्रगतिवादी उपन्यास लेखक सारे विश्व के लाल झण्डे के नीचे लाने की कामना रखता है। मानवतावाद पर इनकी अटूट श्रध्दा है। वे जातीय, धार्मिक, आर्थिक भेदा-भेद को मिटाकर मानवतावाद की नींव डालना चाहते हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी उपन्यासकार होने के कारण उनके आलोच्य उपन्यासोंमें उपर्युक्त तथ्यों के अनुसार मानवतावाद के दर्शन होते हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी उपन्यासकार होने के कारण उनके आलोच्य उपन्यासों में मानवतावाद के चित्र अत्यांतिक स्पष्ट मात्रा में उभर उठे हैं।

भैरवजी के उपन्यास "मशाल" 1951 में मानवतावाद के दर्शन हमें अनेक जगहों पर देखनेको मिलते हैं। इन्सान हमेशा एक-दूसरे से प्रेरित होकर अपनी जिन्दगीका मकसद हासिल करता है। पूंजीपति, मालिक, महाजन आदि शोषक लोग गरीब, निहत्थे, असहाय मजदूरोंका मनचाहे ढंग से शोषण करते हैं। मगर ये चन्द लोग अत्याचार करके अन्य लोगों का फायदा उठाते हैं मजूर कहता है - "हमने ये दुनिया बनायी है। दुनिया की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनिया की हर चीज हमारी है।"[30] आज मजदूरोंने अपने हक को समझ लिया है। शकूर कहता है - "एक देश है रुस --- वहाँ हुआ था एक लेनिन। और उसने और----और स्तालिन ने अपने लाखों, करोडों किसान मजदूर साथियोंका पहली बार संगठन किया। दुनिया को पहलीबार बताया कि ये खेत किसानों के हैं, खेतोंकी पैदावर किसानोंकी हैं, क्योंकि वही अपनी मिहनत से अनाज पैदा करता है, ये मिल उसकी पैदावर मजदूर की है, क्योंकि वही मशीन बनाता है, मिल खडा करता है, मशीनें चलता है और सबकुछ पैदा करता है।"[31] परंतु सभी साधनोंसे वे वंचित रहते हैं। लेखक यहाँ मानवतावादी दृष्टिसे मजदूरों की यह हालत विशद करना चाहता है।

गुप्तजी के "गंगामैया" 1953 में उपन्यास का नायक मटरु में मानवता कूट-कूट कर भरी हुआ देखने को मिलती है। मटरु के दिल में किसानों के प्रति तथा गोपी की विधवा भाभी के

प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण उभर उठा है। गोपी की विधवा भाभी को असहाय स्थिति देखकर मटरु के दिल में मानवतावादी विचार उभर उठते हैं। मटरु और गोपी की मूलाकात बनारस के जेल में होती है और जब उसे गोपी की विधवा भाभी की जानकारी मिलती है तब मटरु मानवतावादी दृष्टिसे सोचते हुअे भाभी की शादी गोपी से करना चाहता है। गोपी अपने मॉ-बाप, रुढी-परंपरा, समाज का विचार करता है तब गोपी को समझाते हुअे मटरु कहता है - "तू उसे अपना ले। बडा पुण्य होगा भैया। कसाई के हाथ से एक गऊ और मिस्कर के हाथ से एक चिरई बचाने में जो पुष्टा मिलाता हैं, वही तूझे मिलेगा। बाहादुर ऐसे मौके पर पीठ नहीं फेरते।"[32] यहॉ रुढियों के खिलाफ आवाज उठाकर भैरवजीने मानवता वाद की प्रतिष्ठापना की है।

भारत में विधवाओंकी स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। वैधव्य भारतीय नारियों के लिए अभिशाप माना जाता है। भैरवजीने "गंगामैया" में भाभी को विधवाओं का प्रतिनिधी पात्र बनाकर विधवाओंकी स्थिति पर मानवतावादी दृष्टिकोण से सोचकर, विधवा-विवाह संपन्न कराकर विधवाओं की दुर्गति को सुस्थिति में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजीके उपन्यास "नौजवान" 1972 में मानवतावाद और विश्वमानवतावाद की चेतना प्रवृत्तियॉ देखने को मिलती है। यहॉ मानवतावाद भरत के पिताजी के रुप में हमारे सामने आता है। भरत के पिताजी भरत से मानवतावाद समझाने का प्रयास करते हैं जैसे - "ऐसी संकुचित मनोवृत्ति को लेकर इस संसार में कोई क्या कर सकता हैं? मनुष्य और पशु में यही तो सबसे बडा अंतर है कि मनुष्य अपने साथ-साथ दूसरों के लिए भी जीता है, लेकिन पशु केवल अपने लिए जीता है।"[33] भरत के पिताजी भरत को समझाते है - "तुम्हारा जीवन केवल अपने लिए अपने मॉ-बाप के लिए ही नहीं हैं, बल्कि संपूर्ण देश के लिए है। संपूर्ण देश के लिए ही क्यों, संपूर्ण विश्व के लिए ही है, संपूर्ण मानवता के लिए हैं।"[34] वे अपने बेटे को महात्मा गांधीजी का विशाल दृष्टिकोण तथा मानवतावादी भाव बता देते हैं। गांधीजीने देश के लिए बैरिस्टरी छोडी। देश की स्वतंत्रता के लिए अपने जीवन को कुर्बान किया। श्री रामचंद्रजीने चौदह वर्ष वनवास भोगा, महत्मा गौतमबुध्दने राजपाट, सुखवैभव, माता-पिता, पत्नी-पुत्र आदि सब को त्याग दिया था। यहॉ पिताजीने भरत को गांधी, राम, गौतम बुध्द आदि के उदाहरण देकर राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम तथा मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्व विशद किया है जो प्रगतिवादी चेतना का महत्वपूर्ण संबल माना जाता है। "भैरवप्रसाद गुप्तजीने "आग और आंसू" में शेषण के खिलाफ बांदी जीवन को क्रांन्ति के लिए उकसाया है। इस उपन्यास का पात्र लल्लन का विकास नयी पीढिको चेतना दे सकता है। लल्लन के प्रगतिशील चरण के द्वारा लेखक ने भविष्य में आनेवाली उस चेतना कि ओर संकेत किया है जो पूर्वजों की घृणित परंपराओंको तोडकर मानवता की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील है। पुरुष स्त्री का शोषण नहीं करेगा और स्त्री पुरुष को

अनुचरी न रहकर शकुंतला के समान शक्तिशलिनी बनकर पुरुषोंके प्रगतिशील मार्ग में सहाय्यक होगी। स्पष्ट है कि इस उपन्यास में "लल्लन के जीवन की ये प्रगतिशील चरण ही नवीन मान की सृष्टि करेंगे।"[35] यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि लल्लन की प्रगतिशील चेतना परंपराओं और रुढीयों के खिलाफ है।

निष्कर्ष :

भैरवजीने अपने उपन्यास "मशाल", "नौजवान", "आग और आंसू" में मानवतावादी एवं विश्वमानवतावादी तथ्यों पर प्रकाश डालकर अपने प्रगतिवादी दृष्टिकोण को उभारा है। दु:खितों के दु: खो को, पीडाओं को मीटाना और उनके जीवनमें सुख का प्रसार करना यही मानवतावाद के तथ्य को यहाँ मुखर बनाया है।

सामाजिक जीवन का यथार्थ :

प्रगतिवादी उपन्यास साहित्य में निम्नवर्ग के जीवन को केंद्र माना है। इन उपन्यास लेखकोंको व्यक्ति और समाज की कटू सत्यों के सामने ऐश्वर्य, विलास, मादकता फिकी लगती है। जीवन के अनाचार, भूख की पुकार और पीडित की हाह:कार ने उनका मन मचल उठता है। प्रगतिवादी उपन्यास लेखक कल्पना के पंख लगाकर अस्मान में विचरण करने की अपेक्षा धरती तल पर के जीवन को खुली आँखो से देखना चाहते हैं। वे सामाजिक यथार्थ के पक्षधर नजर आते हैं। वे जनसमूह की आर्थिक विषमता, उनकी समस्याएँ आदि को यथार्थ रुप में पाठकों के सामने लाना चाहते हैं। मजदूरों, कृषकों, पीडितों, दलितों आदि के जीवन को वे यथार्थ रुप में चित्रित करना चाहते हैं। मजदूरोंकी बस्ती, उनके कच्चे उबड-खाबड घर, उनके मैल-कुचैले बच्चें, अनकी आर्थिक कमियाँ, उनका दारिद्रय आदि सभी का यथार्थवादी दृष्टिसे चित्रण प्रगतिवादी उपन्यास लेखक करना चाहते हैं। ग्राम्य जीवन के प्रति सहानुभूति प्रगतिवादी उपन्यास लेखकोंकी आधारशीला लक्षित होती है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यास इसी कसौटी पर पूरे उतरते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजीके "मशाल" 1951 में मजदूरों के जीवन का यथार्थ चित्रित किया है। सरकार द्वारा मिल में आठ घण्टें का दिन लागू करना, मिल-मालिकों द्वारा हर पाली नियत समय से बीस-पच्चीस मिनट पहले शुरु करना, हर पाली को बीस-पच्चीस मिनट बाद में बंद करना, सरकार द्वारा लागू किया गया आठ घण्टें का नियत समय मिल-मालिकोंद्वारा तिडकमबाजी से असफल बन देना, मिल-मालिकोंकी इस तिडकमबाजी को देखकर मिल-मजदूरी द्वारा मिल-मालिकोंके खिलाफ अवाज उठाना, मजदूर संगठन के माध्यम से मिल-मालकिोंका मुकाबला करने को मजदुरों द्वारा पूरी तैयारीयाँ करना, मजदूरोंको डराने-धमकाने के लिए पुलिसों को तैनात करना, मिल-मालिकोंद्वारा तालाबंदी करना,

मजदूरों द्वारा पथराव करना, कांग्रेस सरकार द्वारा "ट्रेड डिस्प्युट बिल" का ऐलान करके मिल-मालिकोंको सूरक्षा का कवच पहनाना, मजदूरोंके हततांलपर रोक लगाना आदि बातें यहाँ मिल-मालिक मिल-मजदूरों के वर्ग-संघर्ष पर यथार्थ रुप में प्रकाश डालती है। मजदूर नेता कामरेड युसूफ इस बिल की समीक्षा करते हुअे कहता है - "यह बिल भारत रक्षा कानून का ही दूसरा रुप है। इस बिल में जमदूरों के हडताल करने के अधिकार पर वार किया गया है, जो मजदूरों की जमात का अधिकार है। गरीबी, भूख और शोषण से हिन्दुस्तान के मजदूर उब गये हैं।"[36]

इस उपन्यास में हडताल संबधी हथकण्डें, हडतालों में फूट डालनेवाली बिचौलिया शक्ति, हडतालों में होनेवाले पथराव, मारकाट, तालाबंदी, गिरफ्दारी, माख्काट, टिअर-गैस आदि का यथार्थ चित्रण भैरवजीने किया है।

मजदूरोंपर किये गये अत्याचार का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए मंजूर कहता है - "अत्याचारी के विरुध्द हमने आम हडताल कर, जलूस निकालकर अपना गुस्सा जाहीर किया, तो क्या अपराथ किया? आप एक सौ चौआलीस लगा दे, हमारी बस्तियों में कफर्यु की धमकी दें, मिटिंग, जुलूस पर पाबन्दी लगा दें, हडताल को गैरकानूनी होने का फतवा देदें, नारे लगाना, यहाँ तक कि दीवार पर लिखना भी जुर्म बना दें - याने हर तरह से हमारा चलना-फिरना, बोलना-चलना दुश्वार कर दें और हमारी जिन्दगी को नरक बना दें और हमें जेलों में बन्द कर दें और फिर हमसे यह उम्मीद करें कि हम आपके हर अन्याय, जुलुम, ज्यादती और अपमान को सिर-आँखों पर ले चुप हो जाये।"[37]

मंजूर, शकूर, नरेन, मिश्रधेनुक, कामरेड युसुफ, कालीशंकर जैसे सभी पात्र सजग हो गये है, अपने अधिकारों को जान गये है। इसलिए गुप्तजीने कहा है - "मजदूरों के इस संयूक्त मोर्चे की अवाज कानपुर के मजदूर-अन्दोलन के इतिहास में अमर रहेगी।"[30]

गुप्जीने मजदूरों के दिल में संघर्ष की मशाल जलाई है और मजदूरोंके जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। इस उपन्यास में "फ्लैश बैक" के आधारपर ग्रामीण जीवन का चित्रण, अंग्रेज पुलिस अफसरों के अत्याचारों का चित्रण, मजदूरों की दयनीयता, आदिका यथार्थ चित्रण किया गया है। पूरे मजदूर-जीवन पर लिखा हुआ यह एकमात्र यथार्थ रुपमें उपन्यास हिन्दी में होगा। यह प्रेमचंद की परंपरा में शुध्द राजनीतिक उपन्यास है, लेकिन राजनीति की तरह शुल्क न होकर मनोरंजक भी बन गया है।

"मशाल" उपन्यास में मजदूरों का मिल-मालिकोके साथ संघर्ष दिखाते हुअे कानपुर के कपडा मिलका मजदूर अंदोलन, मजदूरों का लम्बा संघर्ष, हडतालों, धरना, गिरफतारियाँ और इन सबके बाद मजदूरों की सफलता को दिखाया गया है।

किया है। शहरी धरातलपर कानपुर के मज्दूर अंदोलन का यथार्थ, उपन्यास का नायक नरेन और कोई न होकर गुप्तजी स्वयंही है। इसलिए असलीयत को यहाँ यथार्थ की भावभूमिपर खडा करके सामाजिक जीवन के यथार्थ चि. काम किया है।

"गंगामैया" 1953 में गरीब मजदूरों का शोषण, के खिलाफ मटरु द्वारा शान्ति का निर्माण, भारतीय संस्कृति में विधवा जीवन की स्थिति ओर गति, मजदुर और जमींदार संघर्ष, मटरु के बंदी बननेपर पूजनद्वारा मजदूर-किसानों के अंदोलन को आगे बढाना, जमींदारों के शोषण पर मजदूर-किसानों की जीत दिखाना आदि सारी घटनाएँ प्रस्तुत उपन्यास के सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करती है। गरीब मजदूरों की जिंदगी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना भैरवजीका प्रमुख उद्देश्य यहाँ स्पष्ट होता है।

भैरवजीके उपन्यास "सती मैया का पौरा" 1959 में साम्प्रदायिकतासे उत्पन्न सामाजिक भेदाभेद का दलीत-पीडित नारियों की आस्मिता लूटने का, राजनीतिक संघर्ष का, जमींदार-मजदुर संघर्ष का, पुलिस भ्रष्टाचार, दलीय प्रतिबध्दताका, सरकारी अफसरों की भ्रष्ट नीतिका, पंचवार्षिय योजनाओं की असफलता का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। सती मैया के चौरे को संघर्ष का प्रतीक मानकर हिन्दु-मुसलमानों में उप्तन्न फसादों का चित्रण यहाँ यथार्थ की बुनीयादपर खडा कर दिया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के "नौजवान" 1972 में घर के भीतर होनेवाला नारी का शोषण, सामंती शिक्षा पध्दति के विरुध्द छात्र अंदोलन, विश्वविद्यालयिन पदाधिकारियों की अव्यवस्थित कार्यप्रणाली, पुलिस का आतंकवाद, छात्रअंदोलन, आंदोलन में हिसात्मकता, पथराव, मारकाट, हाथा-पाई आदि का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

भैरवजीके "आग और आंसू" 1983 में बांदी जीवन की दासता, सांमतीय परिवेश में पले हुअे जमींदारों की भोग लालसा, बांदी जीवन की असाहयता, दलीत पीडित लोगों की वेठबेगारी, बांदी जीवन की दासता से मुक्त होने के लिए की जानेवाली दौडधूप आदि का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हो चुका है।

गुप्तजीने स्वयं अनुभूति और संवेदना के आधारपर आलोच्य उपन्यासोंमे यथार्थ भावभूमि को प्रस्तुत किया है इसलिए उनके सभी उपन्यास सामाजिक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करने में समर्थ बन बैठे है। इस यथार्थ चित्रण से समाज के सामने असलियत को प्रस्तुत करके गुप्तजीने प्रगतिवादी चेतना प्रवृत्ति को बढावा देने का प्रयत्न किया है।

निष्कर्ष :- भैरवजीने आलोच्य उपन्यासों में मिल-मजदूर, कृषक, विधवा-नारी, सामंती शिक्षा व्यवस्था

सांप्रदायिक फसाद, वर्ग-संघर्ष, छात्र-आंदोलन आदिका अत्यंतिक यथार्थ चित्रण करके प्रगतिवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

रुढि विरोध :-

'प्रगतिवादी उपन्यासकार इश्वर की सत्ता, आत्मा-परमात्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि पर विश्वास नही करते वे मानव को सर्वश्रेष्ठ मानते है। प्रगतिवादी उपन्यासकारों के लिए धर्म एक आफीम का नशा और किस्मत एक सुंदर प्रवंचना है। वे आर्य-अनार्य, ब्राम्हण-शुद्र, उँच-नीच, काला-गोरा आदि का भेद नही मानते। वे ईश्वर और धर्म निर्मित नियम तथा रुढियों को उध्वस्त करना चाहते है। वे मंदिर-मसजिद, गीता-कुराण आदि का महत्व नही मानते। वे अंधविश्वासों, मिथ्या परंपराओं और रुढीयोंपर प्रखर प्रहार करके मानव को मानव रुप में खडा करना करना चाहते है।'[39] अर्थात रुढि विरोध उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग महसूस होता है।

भैरवप्रसाद गुप्तजीके उपन्यासों में रुढि विरोध, परंपराओं के प्रति विद्रोह हमे देखने को मिलता है।

'गंगामैया' 1953 में रुढियों एवं परंपराओंका विरोध करके भैरवजीने प्रगतिवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। भैरवजीने इसलिए मटरु और गोदी जैसे सशक्त प्रगतिवादी पात्रों का सृजन किया है। मटरु द्वारा 'दीयर' की खेती पर फसल बोना, अन्य किसानों को भी ऐसा ही करने को बाध्य करना, नदी की रेतपर उगनेवाले झाऊँ और सरकंडों पर जमींदारोंद्वारा हक जताया जाना, गंगामैया पर सभी का समान अधिकार है, ऐसा मटरुद्वारा मानना, मटरु द्वारा गंगामैया की कुंआरी मिट्टी पर फसल को बोना, फसल की अच्छी पैदास से जमींदारों के मुँह में से लार टपकाना, जमींदारों द्वारा दुनी-चौगुनी सलामी तथा लगान को किसानों पर थोंपा देना, जमींदारों की बेवकुफी पर मटरु द्वारा किसानों को जागृत करना आदि घटनाएँ यहाँ जमींदारों की परंपरागत शोषण नीति की रुढि पर प्रकाश डालती हैं। जमींदारों की परंपराओं को तोडने के लिए बाध्य हुआ मटरु किसानों को भी इन परंपराओंको तोडने के लिए बाध्य करता है।

मटरु किसानों को समझता है कि - 'गंगामैया पर उनका कोई अबाई हक नहीं है। उसके पानी की तरह ही उसकी धरती पर भी हम सब का बराबर हक है। तुम लोग मेरा कहना मानों और मेरा पुरा-पुरा साथ दो। देखेंगे कि जमींदार हमारा क्या बिगाड लेते हैं।'[40]

मटरु जमींदारों ने बनाया हुअे परंपरागत नियमों को और रुढियों को तोडते हुअे सभी किसानों में चेतना भरने का काम करता है। जो रीति गाँव में सालों से चलती आयी थी उसे तोडकर वह

किसानों को चेतित करते हुअे कहता है - "यह याद रखो की एक बार अगर जमींदारों को तुमने चरका लगा दिया तो तुम्हीं नहीं तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फँस जाएँगे। उनकी लोभ की जीभ सूरसा की तरह बढती जाएगी और एक दिन सबको निगल जाएगी।"[41]

मटरुसिंह सभी किसानों में चेतना भरने का काम करता हैं। वह रीति जो सदियों से चली आयी थी उसे तोडकर किसानों को अपने हकों के लिए लडने के प्रेरित करता है और उनका अधिकार उन्हें दिलाकर रहता है इसलिए उसे जेल में भी जाना पडता है।

मटरु गोपी की एक विधवा भाभी से गोपी का विवाह-संपन्न कराकर रुढि विरोध करना चाहता है। मटरु गोपी जैसे पात्र में भी चेतना भरने का काम करता है। गोपी की भाभी विधवा है। गोपी जब जेल से छूटकर बाहर आ जाता है तब उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी भी लंबी बिमारी का शीकार होने के कारण अब इस दुनिय। में नहीं रही है। गोपी भी अब विधुर हो गया। सभी लोग गोपी को शादी की बात करते हैं यह भाभी को ठिक नहीं लगता क्योंकि उसकी भी भवानाएँ है मगर उसे समझने का प्रयास कोई नहीं करता। उपन्यास का पात्र बिलरा भाभी से एक दिन कहता है - "यह कैसा रिवाज है, मालकिन, आपकी बिरादरी का? इस मामले में तो हमारी ही बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा को इस तरह अपनी जिन्दगी खराब करने को मजबूर नहीं करती। मेरा ही देखिए भैया भाभी को छोडकर गुजर गये तो भौजी का ब्याह मुझसे हो गया।"[42] यहाँ बिलरा का रुढि विरोध उभर उठा है।

गोपी की भाभी गोपी से शादी करना चाहती है मगर गोपी की माँ गोपी के निर्णय से सहमत न होकर भाभी से कोसते हुअे कहती है - "जा कहीं डूब मर कुलबोरिना।" और वह रात्री के निबीड, कठोर, भयंकर अंधार को गले लगाने के लिए कुँए की ओर चल पडती है तो सहसा गोपी की दृष्टि उस पर पडती है और गोपी उसे "चंडालों से कहीं दूर" मटरु के यहाँ छोड आता है।

गोपी भाग्यवादी न बनकर अपने प्रगतिशीलता का परिचय देते हुअे कहता है - "भाग्य-वाग्य को तो गोपी नहीं जानता, भाभी ऐसा कभी नहीं हुआ इसलिए आगे भी नहीं होगा यह मैं नहीं मानता। प्रगतिवादी गोपी परिस्थिते से टकराकर परिस्थिति में परिवर्तन करना चाहता है। वह सोचता है - "यह, एक चली आयी खोखली रीति, समाज के एक थोथे रिवाज, सडी-गली एक रुढि, कुल की झुठी मर्यादा के दम्भी-पुजारी माँ-बाप आज अपने खुनी जबडों में एक फूल-सी सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, निहति-सी, अपनी रक्षा करने में अबस, कैदी-सी गुलाम, सुबह के आखिरी तारे सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते है।"[43]

भारतीय नारी की दुर्बलता को दिखाते हुअे भारतीय विवश नारी को आत्महत्या की तरह

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

मुडानेवाला समाज ही है। इसी समाज और परंपरा के चुंगल में विधवा नारियाँ फंस जाती है।

"गंगामैया" में गुप्तजी ने मटरू, गोपी और बिलरा जैसे प्रगतिवादी पात्रों का सृजन करके परंपरा से चली आयी रूढियों के खिलाफ विद्रोह किया है। यहाँ विधवा-विवाह के प्रति समाज की खोकली मान्यताओं को विरोध करके लेखक ने विधवा-विवाह संपन्न कराकर प्रगतिवादी दृष्टिकोण दिखाया है।

भैरवजी के "आग और आंसू" 1982 में लेखक ने सामंती रूढि-प्रथा विरूध्द आवाज उठायी है। उपन्यास का एक पात्र शिवप्रसाद मशहूर कांग्रेसी है वह उपन्यास का प्रगतिशील पात्र चतुरी को अपना चेला बनाता है। वह चतुरी को समझाता है कि वह एक दिन जरूर बडा आदमी बना जायगा मगर चतुरी देखता है कि शिवप्रसाद दिन-ब-दिन आगे बढते जाते है और चतुरी वहीं का वही रह जाता है। चतुरी शिवप्रसाद का साथ छोडकर जमींदारों के खिलाफ लडता है और तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था का विरोध कर नवीन चेतना जागृत करता है।

गुप्तजी ने उपन्यास में सामंती शोषण व्यवस्था में पीसती दासियों का भी यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास का महत्वपूर्ण नारी पात्र मुंदरी के मन में सामंती व्यवस्था के प्रति नफरत है। मुंदरी उपन्यास का प्रगतिशील पात्र है वह बेंगा के भाई पेंगा के साथ भाग निकलने का प्रगतिशील कदम तो उठाती है परंतु वह उसमें सफल नहीं हो पाती। बडे सरकार की सारी गोपनीयता का पर्दा फाश करते हुअे कहती है - "मैं का किसी से डरती हूँ। मैं चिल्ला-चिल्लाकर कहूँगी, मैं एक-एक की बखिया उधेडकर रख दूँगी। इन बडे सरकार को तो कटहरे में खडा करो। फिर सुनो।...महराजिन। जलेसरी। पटेसरी। जनकिया। सुगिया। बदमिया। और ओ तुम सब भी आओ, जो भाग गयी या मर-बिला गयी। बोलो, तुम सब बोलो। नोच डालो इस पापी के सिर के एक-एक बाल को। नोच डालो।"[44] मुंदरी लाख चाहने पर भी अपने सतित्व की रक्षा नहीं कर सकती और उसे उपहार के रूप में "सुनरी" मिलती है। मूंदरी बडे सरकार का खुलकर विरोध करती है।

मुंदरी सामंती व्यवस्था को जंजीरों को तोडना चाहती है, तोडने का प्रयास करती है वह इसमें सफल तो नहीं हो पाती लेकिन अपने आप को सुधारने का प्रयास करके वह पुरानी पीढी की जंजीर तोडकर आगे बढने का प्रयत्न करती है।

निष्कर्ष :- भैरवप्रसाद गुप्तजी के "गंगामैया", "आग और आंसू" आदि उपन्यासों में जमींदारी, रूढि-प्रथा, विधवा-विवाह निर्बंध की प्रथा, शोषण की प्रथा आदि के विरूध्द आवाज उठाकर रूढि विरोध का ऐलान किया है। इन रूढि-परंपराओं को तोडने के लिए उन्होंने संघर्ष को भी खडा कर दिया है। इन उपन्यासों में मटरू,गोपी, बिलरा, चतुरी, मुंदरी रूढि-विरोध करनेवाले पात्र दिखाएँ है।

नारी शोषण :-

प्रगतिवादी उपन्यास लेखक मजदूर तथा किसानों के समानही नारी को भी शोषित मानते हैं। इन उपन्यास लेखकों के मतानुसार नारी युगों-युगों से सामंतवाद की कारा में पुरूष दासता की शृंखलाओं से आबध्द बनकर अपना गुजर-बसर कर रही है। नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है और पुरूष की वासना तृप्ति का केवल उपकरण बन चुकी है। इस हालत में प्रगतिवादी उपन्यासकार नारी की इस दशा पर सहानुभूति प्रकट करते हैं। नारी के प्रेम का भी चित्रण प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने किया है जिससे कहीं-कहीं पर अश्लिलता के दर्शन होते हैं। प्रगतिवादी उपन्यास लेखक नारी स्वातंत्र्यकी पुकार करना चाहते हैं। वे नारी का स्वतंत्र अस्तित्व चाहते हैं। वे सभी वर्ग के नारियों की हिमायत करना चाहते हैं। प्रगतिवादी उपन्यास लेखकोंने कृषक नारियों, श्रमिक महिलाओं, दलित-पीडित नारियों के स्वातंत्र्य की वकालत की है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के उपन्यासों में सामंती बांदियों की दुर्दशा का, विधवाओं का, दलित नारियों का अत्यंतिक कारूण्यिक चित्रण मिलता है। इस दशा में नारी को स्वतंत्र बनाने के लिए उन्होंने निम्न-स्तर की नारियों में चेतना जागृति करने का काम किया है। भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में उपर्युक्त सारी बातें लक्षित होती हैं।

"मशाल" 1951 में केवल दो नारियों का चित्रण लेखक ने किया है जिसमें सकीना का स्थान महत्वपूर्ण है। सकीना अलीम की पत्नी है। अलीम एक सच्चा स्वतंत्र सेनानी है। वह स्वाधिनता की लडाई लडता है जिसके परिणामस्वरूप उसके माँ-बाप को पेड से बांधकर पीटा जाता है। अलीम को गोलियों का शिकार बनाया जाता है, तो सकीना के साथ पूरी बटालीयन एक-एक करके बलात्कार करती है। सकीना बलात्कारित नारी है।

सकीना पर पूरी अंग्रेज बटालीयन द्वारा बलात्कार करना, पुलिस की नौकरी करनेवाले उसके मौसेरे भाई द्वारा उसे बचाना, मौसेरे भाई के साथ सकीना का कानपुर आना, मंजूर का शकूर की सहायता से कपडा मिल में नौकरी करना, डिसूझा के घर सकीना का चौका-बर्तन का काम करना, सकीना का बेकाबू बनकर डिसुझा को तमाचा जडाकर घर से भाग जाना, उसकी मुलाकात नारियों की अस्मत से खिलवाड करनेवाले अम्मन से होना, सकीना का चमनगंज में आकर सकीना से "बेला" बनना, बेला का फिल्म देखने के बहाने एक सौदागर के साथ बाहर निकलकर शकूर के घर पहुँचना, वहाँ सकीना की मुलाकात नरेन से होना ये सारी घटनाएँ सकीना के जीवन के भयावह करवटों पर प्रकाश डालती हैं। उसे समझाते हुअे नरेन कहता है - "अब यह लूट का बाजार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। उस वक्त वे गोरे फौजी न होंगे, जो तुम-जैसी मासूम औरत पर जुल्म तोडे, उस वक्त वह गुण्डा न होगा, जो तुम जैसी भटकी औरत को भगा ले जाय, उस वक्त वह अड्डा न होगा जहाँ तुम जैसी देवी को अस्मत बेचने

के लिए मजबूर किया जाया भाभी, वह जमाना सच्चे इन्सानों का जमाना होगा, सच्ची जिन्दगी का जमाना होगा, सच्ची मेहनत का जमाना होगा, सच्ची मुहब्बत, इज्जत और आबरू का जमाना होगा। इसलिए आज दुनिया के सभी गरीबों और ईमानदार इन्सानों का यह सबसे बडा फर्ज है कि वे उस जमाने को लाने के लिए जो लडाई चल रह है, उस लडाई को लडें, उस लडाई को कामयाब बनाने के लिए सब-कुछ कुरबान कर दें। तुम्हें, हमें, सबको इस लडाई का सैनिक बनना है।"[45] यहाँ नारी शोषण के खिलाफ आवाज उठायी है और नारी के मुक्त जीवन की मांग पेश की है।

नरेन, सकीना, मंजूर और शकूर अब इस लडाई को लडने के लिए तैयार हो गये है जिसका परिणाम उनकी आठ दिन से चल रही हडताल है। यहाँ सकीना को संबल देकर नारी शोषण के खिलाफ उसे उकसाने का प्रयत्न किया है।

गुप्तजी के "गंगामैया" 1953 में नारी शोषण के रूप में विधवा भाभी का सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। गोपी की विधवा भाभी के पति की मृत्यु के बाद उसकी मधुर स्मृति में अपना जीवन बिताना, भाभी का अपना विधुर देवर गोपी के प्रति अंदर-ही-अंदर से आकर्षित होना, विधुर गोपी के लिए अच्छे-अच्छे रिश्तों का आना आदि घटनाओं के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण लक्षित होता है। गोपी कहता है - "अगर पत्नी की मृत्यु के बाद पुरूष दूसरी शादी कर सकता है तो पति के मरने के बाद स्त्री को यह अधिकार क्यों नही है?" जब वह मटरू से मिलता है तो मटरू उसे अपनी भाभी को अपना लेने की सलाह देता है। जब भाभी की इच्छा का गोपी को पता चलता है तब गोपी इस बात को अपने माँ-बाप के सामने उपस्थित करता है तब गोपी की माँ सारे घर को सर पर उठा लेती है। गोपी की विधवा भाभी गोपी से कहती है - "हमारा समाज, हमारी बिरादरी, हमारे माँ-बाप ऐसा कभी न होने देंगे बाबू।"[46] गोपी के पिता भी गोपी से साफ-साफ कहते हैं - "वह मेरे घर की देवी हो सकती है, लेकिन बहू, बहू... मह मनिक ही रहेगी।"[47] मटरू द्वारा हिम्मत पाकर गोपी अपने भाभी से विवाह करने का निश्चय कर लेता है अपने भाभी की राय के इस बारे में पूछता है तो भाभी अपने दबाये हुअे रूदन भरे स्वर में उसे कहती है कि - "मेरे भाग्य में यही लिखा था बाबू.... ऐसा कभी नहीं हुआ...बाबू ऐसा भी क्या? तो गोपी इस विचार को नकारता हुआ अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता है।

गोपी की माँ बहू को कोसती हुअी कहती है - "जा कहीं डूब मर कुलबोरिन।" और वह रात्री के निबिड, कठोर, भयंकर अंधार को गले लगाने के लिए कुएँ की ओर चल पडती है तो सहसा गोपी उसे पकड लेता है और उसे "चंडालों से कहीं दूर" मटरू के यहाँ छोड आता है।

भारतीय नारी की दुर्बलता दिखाते हुअे भारतीय विवश नारी को आत्महत्या की तरफ मुडानेवाला समाज ही है। इसी समाज और परंपरा के चुंगल में विधवा नारियाँ फंस जाती है। विधवा-विवाह संपन्न करा के गुप्तजी ने प्रगतिवादी चेतना को दिखाया है। नारी-ही-नारी का दुश्मन होती है, यह भी यहाँ दिखाया गया है।

रूढि-परंपराओं से ग्रस्त आज का बुर्जुआ वर्ग विधवा-नारियों के जीवन से कैसे खिलवाड करता है इसका स्पष्ट पता यहाँ चलता है। नारी शोषण के विविध आयाम आज लक्षित हो रहे हैं परंतु विधवा नारी का शोषण सबसे भयंकर और पाशवी होता है। विधवा भाभी इसका अच्छा उदाहरण है।

भैरवजी के "सती मैया का चौरा" 1959 में ग्रामजीवन में छोटी-बडी जातियों में स्थापित पारस्परिक यौन संबंध और ग्रामीण परिवेश की परिवर्तित नैतिक मान्यताओं का पता चलता है। गाँव के बहुत से लोग यौन संबंधों में अटके हुअे रहते हैं। हीन जाति की स्त्रियों पर कभी जबरी संबंध स्थापित किये जाते हैं परिणामतः छोटी जातियों में इन संबंधों के प्रति तीव्र प्रतिक्रियाएँ उभरने लगती है। प्रस्तुत उपन्यास में छोटी-बडी जातियों के यौन संबंधों ने संघर्ष को जन्म दिया है। पिअरी गाँव में दिन-दहाडे तेली आने से गुजर रही चमार की बेटी कैलासिया को नंदराम का लडका किशन जबरदस्ती उठा लेता है और बलात्कार करता है तब सारी चमारौटी लाठी लेकर निकल पडती है। एक-दूसरे का प्रतिकार किया जाता है। थाने में रपट दी जाती है और संघर्ष निर्माण होता है। लगता है आज छोटी जातियों में भी अन्यायी प्रवृत्ति के खिलाफ चेतना का निर्माण हो पाया है। जमारौंधे के चमारों के हाथ में लाठी लेकर संघर्ष के लिए खडा रहना इसका अच्छा उदाहरण है। इस उपन्यास में मन्ने का भी गाँव की बसमतीया से प्यार है, मन्ने चोरी-चोरी सम्बन्ध निर्वाह करता है लेकिन एक दिन मन्ने की पत्नी इन्हें पकड लेती है। फिल को वह बसमतीया की नाक में पाती है और उसकी खूब पिटाई करती है। बसमतिया की माँ इस समाचार को पाते ही बडे आममियों के यथार्थ पर प्रकाश डालती हुअी माँग करती है कि - "आपने लडकी रखी है इसकी परबस्ती का इंतजाम कर दो।.... लडकी आपके पास सोई है कि कोई ठठठा है आप इस तरह हमें निकालेंगे तो पंचायत है, कचहरी है।"[48] यहाँ बसमतीया के माँ के इन शब्दों में युग की चेतना है। बडे लोगों के नैतिक चरित्र और उसकी चालबाजी का अहसास बसमतिया को अब होता है। बसमतिया बढता हुआ झगडा देख माँ को लौटने के लिए कहती है और मन्ने पर गहरा आघात करती हुअी कहती है - "चल रे भाई चल।.... रात काहे पिया नथीया गढा देई, होत भिनसार बसरी गईल बतीया.... इन लोगन के मुँह और गांड में कोई फर्क नहीं।"[49] यहाँ बसमतीया की चेतना भी उभर उठी है। वह इन दुष्टकर्मा व्यक्तियों को नरभक्षक कहकर फटकारती है। ये लोग

गरीबों की इज्जत से खेलते हैं और बाद में प्रगतिशीलता का झूठा नकाब पहनने की कोशिश करते हैं। यहाँ नारी शोषण पर प्रगतिवादी दृष्टिकोण के साथ सोचकर शोषित नारियों में चेतना जागृति का काम किया है।

गुप्तजी के "नौजवान" 1972 में भारतीय नारी शोषण के विविध आयाम हमें देखने को मिलते हैं। घर और बाहर दोनों क्षेत्रों में आज नारी का शोषण तेज गति से होता जा रहा है। प्रगतिवादी लेखक भैरवप्रसाद गुप्तजी यहाँ नारी के पक्षधर बनकर घर में नारी की होनेवाली दयनीय स्थिति का चित्रांकन करते हैं। भारतीय पुरूष प्रधान संस्कृति में नारी को घर-परिवार में गौण स्थान दिया जाता है। घर परिवार की पूरी जिम्मेदारियाँ उस पर थोंपी जाती है। नारी केवल काम के लिए ऐसी धारणा अब बनती जा रही है। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने प्रस्तुत "नौजवान" में भारत की माँ के द्वारा नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

भरत के पिताजी का रात-बेरात अपने साथियों के साथ आना, अतिथि सत्कार के लिए माँ को बहुत परिश्रम उठाना पडना, दिनभर की थकीहारी माँ द्वारा मेहमानों के लिए खाना बनाना, घर की सारी जिम्मेदारी माँ के द्वारा उठाना ये नारी बातें घर में स्त्रियों के होनेवाले शोषण पर प्रकाश डालती है। भरत के पिताजी का कथन इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। वे कहते हैं - "भाई मैं एक जनसेवक हूँ। लोग मेरे यहाँ आयेंगे ही, और लोग जब मेरे यहाँ आएँगे तो मैं उनका सेवा सत्कार करूँगाही। आखिर मुझे भी कहीं आना-जाना होता है।"[50] इसपर माताजी अधिक बातें नहीं करती चुपचाप सिर झुकाकर सिसकने लगती और कहती - "मैं मर जाऊँगी तो लोग देखेंगें कि आप कैसे उनका सेवा-सत्कार करते हैं?"[51] पिताजी केवल आदेश देना चाहते हैं। माताजी-पिताजी के इस बर्ताव पर हमेशा उदास रहती। आँसू टपकाती। माँ की यह स्थिति देखकर भरत का मन व्याकुल होकर रोने लगता है तब माँ कहती हैं - "तू मत रो मेरे लाल। एक तूही मेरी आँखों का तारा है। तेरा पालन-पोषण मैंने अपने खून और मांस से किया है। तू जल्दी बडा हो और पढ-लिखकर कोई नौकरी कर। मैं तेरी बहू लाँऊ और थोडासा आरम करूँ।"[52] यहाँ माता की दयनीयता और पुत्र के प्रति माँ के उज्वल सपने देखने योग्य है। पिताजी स्वतंत्र अंदोलन में जेल जाने के बाद इन्हीं दिनों माताजी ने अनेक कठिनाईयों को उठाकर निर्वाह किया था।

भरत की माँ प्रतिकूल परिस्थितियों में दिन-रात रोती रहती। महाजनों और ठाकूरों का आटा वे पिसती, धान कुटती इन्हीं कामों के लिए जो गजदूरी, अनाज और सब्जियाँ मिलती उन्ही से वे अपना परिवार चलाती। कभी-कभी बिना खाये रह जाती। पिताजी उसे गवाँर, अपढ और नासमझ कहते परंतु अपनी अवहेलना को वह चूपचाप पी जाती। माताजी और पिताजी के जिने का ढंग अलग-अलग

था। यहाँ भारत की माँ का अपने परिवार में पिताजी द्वारा होनेवाला शोषण दिखाकर नारी की दयनिय स्थिति के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने का प्रयास किया गया है। नारी का घर में होनेवाला भयंकर शोषण यहाँ लेखक ने दिखाया है।

भैरवप्रसादजी के "आग और आंसू" 1983 की कथावस्तु जमींदार-किसान से सम्बन्ध रखती है तो दूसरी जमींदार के अंत:पुर से। उपन्यास के दोनों पक्षों की कथा रूढियों और परंपराओं में पिसते-पिसते उब गयी है। कारावास के बंदी के समान वह स्वतंत्र होने को व्याकुल है।

उपन्यास में गुप्तजी ने अनेक दासियों का चित्रण किया है जिसमें जलेसरी, महाराजिन, जनकिया, सुगिया, पटेसरी, बदमिया, सुंदरी और मुंदरी महत्वपूर्ण है।

उपन्यास की प्रगतिवादी नारी मुंदरी जमींदारों और पूंजीपतियों के व्यवहार पर प्रहार करती है। मुंदरी जमींदार की पत्नी रानीजी की बालसखी है मगर उसे अपने स्वतंत्र जीवन का कोई अधिकार नहीं है। मुंदरी आज सिर्फ रानीजी की लौंडी है। लेकिन यही मुंदरी कभी उनकी सहेली और राजदार भी रह चुकी थी वहन और दूती भी।

मुंदरी का यह लौंडिपन उसके माँ से चलता आ रहा है। मुंदरी की माँ तालुकेदार साहब की लौंडी थी और उनकी ही मदद से मुंदरी की शादी कर देना चाहती है मगर - "उसे आज मालूम हो गया है कि शायद यह सिलसिला कभी खतम न हो, यह चलता जायगा, चलता जायगा और आज उसने हमेशा-हमेशा के लिए समझ लिया कि वह लौंडी है, सिर्फ लौंडी और लौंडी की बेटी भी चाहे वह किसी से भी पैदा क्यों न हुई हो, लौंडी है, सिर्फ लौंडी।"[53]

मुंदरी जमींदार की लौंडी बन गयी और उसने यह भी समझ लिया कि - "मैं जनती हूँ, जब तक मेरी यह देह है, तभी तक पूछ है। जिस दिन यह देह बेकार हुई, मैं किसी कोने में सडने-गलने के लिए फेंक दी जाऊँगी। यही सोचकर मैंने अपनी देह से कभी कोई दुश्मनी न की। दिल टूट गया, लेकिन देह को टूटने से बचाये रही।"[54]

मुंदरी रईसों के जिन्दगी का पर्दाफाश करते हुए कहती है - ये रईस अपने धन के मोटे अवरण में अपनी सारी अश्लिलता ढक लेते हैं। वह सोचती है - "हुंह। बेजबानों के साथ चाहे जो कर लो, मुझे न छेडो। मैं जानती हूँ.... सब समझ गयी हूँ। हमारी एक बात और सौ घडे पानी। तुम्हारी सब सान इसलिए है कि हम चुप हैं, हम डरते हैं। नहीं तो, नहीं तो।....मैं जानती हूँ.... तुम भी डरते हो, हमारी एक बात और तुम्हारी सारी सान, सारी इज्जत....कहीं मुँह छुपाने को भी जगह न मिले.... सब रोब-दाब, गोली-बनूक धरी-की-धरी रह जायगी।"[55]

मुंदरी के मन में विद्रोह है परंतु अन्य दासियाँ महाराजिन, जलेसरी, जनकिया, सुगिया,

पटेसरी, बदमिया आदि ऐसी भी हैं जो निरंतर दास्यत्व में रहते-रहते अभ्यस्त हो गयी है। उनकी आत्मा मृतप्राय हो गयी है।

गुप्तजी ने प्रस्तुत उपन्यास में बांदियों का बहुत ही वास्तव चित्रण करके नारी शोषण के सामंतकालीन आयाम पर प्रकाश डाला है।

"नारी-जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं के प्रति मार्क्सवादी जीवन दर्शन के आधार पर हिंदी उपन्यासकारों ने जो भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाया है इसका सम्यक विवेचन भैरवप्रसाद गुप्तजी ने नारी-शोषण के अंतर्गत किया है।"[56]

जमीदारों का नैतिक शोषण भयावह होता है। वे अपनी कामुकता और वासना की पूर्ति के लिए अनैतिकता पूर्ण कार्य करते हैं। निरीह अबलाओं को अपनी कामुकता का शिकार बनाता है और उद्देश्य की पूर्ति होने पर दर-दर की ठोकरें खाने को निसहाय छोड देता है।"[57] "आग और आंसू" यह उपन्यास की इस कसौटी पर पूरा उतरता है।

निष्कर्ष :- भैरवजी ने यहाँ "मशाल" की सकीना, "गंगामैया" की विधवा भाभी, "सती मैया का चौरा" की कैलासिया, बसमतीया, "नौजवान" की भरत की माँ, "आग और आंसू" की मुंदरी, महाराजिन, जलेसरी, जनकिया, सुगिया, पटेसरी, बदमिया आदि बांदियों के माध्यम से तत्कालीन नारी शोषण पर प्रकाश डाला है। इस शोषण के खिलाफ आवाज उठानेवाली सकीना, विधवा भाभी, बसमतीया, मुंदरी आदि नारियों को दिखाकर नारी चेतना को बढावा देने का काम भैरवजी ने किया है।

जातीय एवं सांप्रदायिकत भेदाभेद :-

"स्वतंत्र भारत के बँटवारे ने साम्प्रदायिकता को बढावा दिया। इसी साम्प्रदायिकता की अग्नि ने हिंदुस्तान का बँटवारा किया। आज भी हमारा देश साम्प्रदायिकता के दानवी पंजों से मुक्ति नहीं पा सका। सन 1979 में अलीगढ, जमशेदपुर, अहमदाबाद में साम्प्रदायिक फसाद हो चुके। आज साम्प्रदायिकता की दावाग्नि के कारण भारत की शक्ति खंडित बनती जा रही है। आज के जनप्रतिनीधि अपने आसन को स्थिर बनाये रखने के लिए साम्प्रदायिक भेदाभेद को बढाना चाहते हैं। हिंदी भाषा प्रदेशों में इस साम्प्रदायिकता का रूप भयावह रहा है। साम्प्रदायिक फसादों के इलाकों से संबंध रखनेवाले लेखकों ने अनुभूति और संवेदना के आधार पर साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।"[58] भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" में साम्प्रदायिकता को वाणी देने का काम किया है। इसी साम्प्रदायिकता से उत्पन्न जातीय भेदाभेद पर भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सोचा है।

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित "सती मैया का चौरा" साम्प्रदायिक संघर्ष का प्रतीक माना

जाता है। इस चौरे को खोदा जाना साम्प्रदायिक समस्या की तरफ संकेत करना है। मुन्नी इसी के कारण गाँव में बढते हुअे संघर्ष पर प्रकाश डालते समय कहता है - "असल में यह लडाई ऊपर के तबकों की है और यह हमारे देश के सामंतवाद की देन है। इन लडाईयों में केवल हिन्दु या मुसलमान राजाओं, सामंतो और पूंजीपतियों को ही लाभ हुआ है। आम जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हमेशा ही पिसती रही है क्योंकि सामंत वर्ग धन के नाम पर अपना मोहरा बनाता रहा, उन्हें ही लडवाता रहा, उन्हें ही मरवाता और कटवाता रहा, पहले युध्दभूमि में और बाद में हंगामें में।"[60]

प्रस्तुत उपन्यास में मन्ने को जब हिन्दी स्कूल में दाखिल करा दिया जाता है तो गाँववाले प्रचार करते है कि - "हिन्दू लडके मुन्नी के मुकाबले में पंडितजी ने मुस्लिम लडके मुन्ने को खडा कर दिया है और इस्लामिया स्कूल के मास्टरों ने यह कहा कि मन्ने तो अब जरूर काफिर हो जायगा।"[61] जातीयता एवं साम्प्रदायिकता की यह भावना मन्ने और मुन्नी की अटूट मित्रता का बंधन बन गयी है। बच्चों के भोलेपन में जातीयता का जहर घोला जाता है और मन्ने का जूठा खाने पर मुन्नी की दर्दनाक पिटाई होती है। यहाँ जातीय भेदाभेद के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता का निर्णय कैसे होता है, इस पर प्रकाश पडता है।

स्वतंत्र भारत में जातीयता के कारण राजनीति गंदी बन बैठी है। जातीयता एवं साम्प्रदायिकता ने राजनीतिकता को संघर्षशील बनाया है। राजनीतिक दलों ने जातीय दलों को प्रश्रय दिया है। यद्यपि हम जाती-वर्गविहिन समाज रचना हमारे देश में असंभव है। ग्राम जीवन में जातीयता की दीवारें तो बहुत ऊँची बन बैठी हैं "सती मैया का चौरा" इसका अच्छा उदाहरण है। "सती मैया का चौरा" में चित्रित पिअरी गाँव जातीयता और साम्प्रदायिकता का आखाडा बन गया है। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने इस उपन्यास में बडी जीवंत और ज्वलन्त समस्या को प्रगतिवादी दृष्टिकोण के साथ उठाया है। गाँव की राजनीति चाहे कम्युनिस्ट हो चाहे जनसंघी चाहे कांग्रेसी या समाजवादी शहरी नेताओं द्वारा ही नियंत्रित हो गयी है। जनसंघी कैलास ग्रामसभापति का चुनाव हार जाता है और क्रोध के कारण हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रदायिक प्रश्न खडा कर देता है। स्कूल का भवन निर्माण हो या सती मैया का चौरा, चुनाव हो या कुछ और हो हर जगह पर झगडों का निर्माण कराया जाता है। सती मैया का चौरा के प्रश्न पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मन्ने ज्युबली मियाँ के भाई बदे को कहता है - "सती मैया के चौरे के बहाने गवारों को भडकाकर हमारे खिलाफ करना जनता की अंधी धार्मिक भावनाओं को छेडकर अपना उल्लू सिधा करना चाहता है।"[59] स्पष्ट है कि भैरवप्रसाद गुप्तजी प्रगतिवादी विचारधारा के वाहक होने के नाते राजनीति के कारण आयी हुअी इन जहरीली बाधाओं को दूर हटाना चाहते हैं और

एकात्मकता की प्रतिष्ठापना करने के लिए साम्यवाद का नारा लगाना चाहते हैं। प्रगतिवादी साहित्यिक जातीय एवं साम्प्रदायिक भेदाभेद के खिलाफ आवाज उठाकर जातीय एकता के पक्षधर होते हैं। राष्ट्रीय एकात्मता भारतीय प्रगतिवादी लेखकों का एक महत्वपूर्ण विषय रहा है।

डॉ. कमला गुप्ता के मतानुसार - "सती मैया का चौरा" में सर्वत्र साम्प्रदायिकता की आग भडक रही है। छोटी-छोटी बातों को साम्प्रदायिकता का रूप दिया जाता है।"[62] "सती मैया का चौरा साम्प्रदायिक संघर्ष का प्रतीक है। यह संघर्ष हिंदी सामंतवादी आंचलिक उपन्यासों में खूब उभरकर आया है।"[63]

"सती मैया का चौरा" में साम्प्रदायिक भेदाभेद के साथ-साथ जातीय भेदाभेद पर भी संक्षिप्त में सोचा गया है। ग्रामीण समाज में उच्च जाति एवं साधन संपन्न वर्ग के नवयुवक निम्न जाति के महिलाओं से उनके चाहे और अनचाहे भी उनसे अपनी यौन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करते हुअे पाये जाते हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी के शब्दों में "चमरोटिया की एक कमसीन, खुबसुरत, कुवाँरी लडकी दोपहर को गाँव की दुकान से कोई सौदा लेकर तेली आने से गुजर रही थी कि नंदराम का बेटा किसन अपनी बैठक से निकलकर उसे जबरदस्ती गोदी में बिठाकर बैठक के अंदर ले गया और उसके मुँह में कपडा ठूँसकर उसे बेहरमत कर दिया।"[64] स्पष्ट है कि ग्रामीण समाज में उच्च जाति एवं साधन संपन्न वर्ग के नवयुवक दलित महिलाओं से कैसे अनहोनियाँ करते हैं। जातीय भेदाभेद के स्तर पर लेखक ने इसे दिखाया है।

"स्कूल के विवाद को लेकर प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील शक्तियों में मुकदमेबाजी होती है। अतः विजय पग्रतिशील शक्तियों की होती है और पुरानी कमेटी बेहाल हो जाती है।"[65] भैरवप्रसाद गुप्तजी की प्रगतिवादी चेतना का यही लक्ष रहा है।

निष्कर्ष :- भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" में सती मैया के चौरे को लेकर उत्पन्न सांप्रदायिक फसाद का चित्रण किया है। आज राजनीतिक माहौल में नेताओं द्वारा इन फसादों को कैसे चेतीत किया जाता है, यह भी विषद किया है। आज का "राम मंदिर- बाबरी मस्जिद" संबंधी फसाद इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। भैरवजी जनवादी होने के नाते वे राष्ट्रीय एकात्मता पर बल देना चाहते हैं और साम्प्रदायिक फसादों को मिटाना चाहते हैं। यह यहाँ स्पष्ट होता है।

जनजागरण की चेतना :-

जनजागरण की चेतना प्रगतिवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता हो सकती है। आजादी के बाद गाँवों में निम्न जातियों में चेतना प्रवृत्ति का निर्माण हुआ। उन्हें अपने हक और कर्तव्यों का बोध हुआ। सदियों से शोषित, प्रताडित, पददलित जातियों में आत्मसम्मान जाग उठा धीरे-धीरे उनमें

जागृति पैदा होने लगी परिणामतः वे अपने आत्मसम्मान और अपमान को समझने लगे।

गुप्तजी ने "मशाल" 1957 में ऐसे ही जनजागरण को चित्रित किया है। "मशाल" के मजदूर अब जाग गये हैं। वे अपना भला-बूरा समझने लगे हैं। मंजूर, शकूर, नरेन, मिश्रधेनुक सभी जाग चुके है और अपने मेहनत का फल पाना चाहते हैं। नरेन उपन्यास का प्रगतिवादी पात्र है वह अपने मजदूर भाईयों के साथ अपने हकों के लिए लडता है। नरेन और अन्य मजदूर अपने हकों के लिए हडताल करते हैं। नरेन कहता है - "अब यह जुल्म बर्दाश्त नहीं होता। अभी तक हमने मालिकों की गालियाँ सही, फटकारें सुनी, सभी बेइज्जतियाँ बर्दाश्त की। क्या हमारी जिन्दगी का कोई मूल्य नहीं? क्या हम इन्सान होकर भी कुत्ते-बिल्ली से भी गये गुजरे हो गये हैं, जो अपनी जान बचाने के लिए भी कुछ नहीं कर सकते? नहीं अब और नहीं सहेंगे। हडताल होनी चाहिए - मुक्कम्मल हडताल।"[66] यहाँ नरेन में हुआ चेतना का विकास मजदूर वर्ग की नवजागरण लगता है। नरेन विश्वास के साथ कहता है - "मैं यह लडाई अपने खुन की अन्तिम बूँद तक लडुंगा, क्योंकि जीवन मुझे दुनिया की हर चीज से ज्यादा प्यारा है। जो दुनिया को हमेशा के लिए खुशहाल कर देगी, इन्सान - इन्सान की जिन्दगी को हमेशा-हमेशा के लिए सरसब्ज कर देगी, इन्सानियत के माथे से शोषण के कलंक को धो देगी, इन्सान दुश्मनों के पैदा किये हुअे दुःख, गम, आँसू, भूख, गरीबी, नंगेपन को मिटा देगी, समाज शत्रुओं की पैदा की गयी दुश्मनी, अविश्वास, नफरत, गुस्से, ईर्ष्या, धोरणे, चोरी, लूट और व्यभिचार को समाप्त कर देगी, जो संसार के हर बच्चे के होठों पर फूलों की मासूम मुस्काने छिडक देगी, संसार की हर नारी के मुखडें पर चाँद की हसीन किरने बिखेर देगी, और सारा संसार इन मुस्कानों, इन किरनों और इन प्रकाशों से जगमग-जगमग हो उठेगा।"[67] यहाँ नरेन का यह विचार नवजागरण की चेतना का प्रतीक है।

गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" 1959 में जन-जागृति और जनचेतना को उभारने का प्रयत्न किया है। यहाँ कामरेड मुन्नी अपने मित्र से सहमत नहीं कारण वह पिअरी गाँव की जनता में जागृति का परिचय देता है। शासनारूढ कांग्रेस आजादी के पश्चात गाँव की हर पंचायत पर अपना एक छत्र राज्य बनाए रखती है। कामरेड जगत कहता है - "अब गाँव की जनता जाग रही है, किसान जाग रहे हैं, उनपर जो बडे लोगों का प्रभाव था तेजि से नष्ट हो रहा है वे अब अपनी शक्ति पहचानने और अधिकारों के लिए लडने लगे हैं।"[68] यहाँ किसानों और गाँव की आम जनता में संगठन शक्ति के माध्यम से जन-जागृति होती जा रही है इसका पता चलता है।

इस उपन्यासों के साथ-साथ "गंगामैया" में परंपरागत रूढियों के खिलाफ जनजागृति, खेतिहर मजदूरों में अपने हक्कों और कर्तव्यों के प्रति जागृति करने का कान भैरवजी ने किया है। "सती मैया का चौरा" में सांप्रदायिक भेदोपभेद को मिटाकर राष्ट्रीय एकात्मता के नवजागरण को

ललकारने का काम किया है। "नौजवान" में सामंतीय शिक्षा-व्यवस्था के खिलाफ नवजागरण की मशाल को सुलगाने का प्रयत्न किया है तो "आग और आंसू" में सामंतीय जीवन में पलनेवाली बांदी जीवन की कथा-व्यथा के साथ-साथ बांदी जीवन में नवजागरण की चेतना भरने का काम किया है। स्पष्ट है कि भैरवजी जनवादी कथाकार होने के नाते उनके उपन्यास साहित्य का मूल उद्देश्य जनसाधारण में नवजागरण की चेतना भरता है।

भैरवप्रसाद गुप्त स्वयं कहते है - "मैं सर्वहारा के दर्शन, मार्क्सवाद को मानता हूँ और सर्वहारा वर्ग के क्रांति के लिए ही लिखता हूँ।"[69] गुप्तजी का यह कथन जनजागरण की चेतना के लिए अत्यंतिक उपयुक्त लगता है और लगता है कि भैरवजी स्वयं जनजागरण के लेखक है।

निष्कर्ष :- भैरवजी ने "मशाल" में मजदूरों में नवजागरण, "गंगामैया" में रूढियों के खिलाफ जनजागृति, "आग और आंसू" में बांदि जीवन में जनजागृति पैदा करने प्रयत्न किया है। वास्तव में भैरवजी के आलोच्य उपन्यास जनजागृति की एक सफल यात्रा लगते हैं।

नेता, सरकारी अफसर, पुलिस, पंचवर्षीय योजना पर व्यंग :-

प्रजातांत्रिक भारत में नेता, सरकारी अफसर, पुलिस इन पर व्यंग किया गया है। नेता हमारी वोट पर विजयी होते हैं. परंतु नेता और अफसर दोनों मिलकर गाँव का आर्थिक और सामाजिक शोषण करते हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" ।959 में ऐसे व्यक्तियों पर अच्छा व्यंग्य किया है। नेता और सरकारी अफसर बहुत सीमित समय तक ग्राम सेवा में प्रविष्ट होते हैं। ये स्वार्थी और संकुचित दृष्टि के होते हैं। गुप्तजी के उपन्यासों में ये हमें देखने को मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में नेता और सरकारी मशनरी अफसर पिअरी गाँव के स्कूल और शैक्षिक कार्य को विकसित नहीं होने देते। सरकारी अफसर सत्तारूढ दल के पक्षधर बने हुअे हैं। परिणामतः उन्हें गैर कांग्रेसी पंचायत अच्छी नहीं लगती। यहाँ पंचायत का सेक्रेटरी अफसरों की इस प्रवृत्ति को उजागर करता हुआ कहता है - "सरकार तो हमारी है। पंचायत दूसरी पार्टी की कैसे हो सकती है?"[70] गाँव का विकास इन झूठ अफसरों से असंभव लगता है। इसकी वोट में केवल स्वार्थी नीति ही देखने को मिलती है इससे स्वतंत्रता के बाद देहात पिछड गये हैं। देहातों का विकास रूक गया है।

आजादी के पश्चात गाँव पुलिस शोषण के केंद्र बन चुके हैं। बडे-बडे गाँव के लोगों को हथियाकर ये लोग गाँव जीवन का शोषण करते हैं। स्वतंत्र भारत के ग्राम जीवन के पुलिसों का व्यवहार "सती मैया का चौरा" ।959 में देखने को मिलता है। पिअरी गाँव के गरीब चमार की बेटी कैलासिया की इज्जत दिन-दहाडे लूटने पर भी थानेदार प्रतिक्रियावादी स्वर में मन्ने को कहता है - "आप क्यों यह जहमत अपने सिर उठाये है? इन सालों की कौन ऐसी बहु-बेटी बची हुई है। इनके लिए

तो यह सब खाने-पीने की तरह है।"[7] इस कथन से पुलिस माहौल की सामाजिक अवधारणा व्यंग्यात्मक रूप से स्पष्ट होती है। थानों में आज बगैर पैसे रपट नहीं लिखी जाती है सामाजिक सुरक्षा के रखवाले भक्षक बन बैठे हैं। सहज भाव से सुरक्षा की माँग करता हुआ व्यक्ति शड्यंत्रों और कुचक्रों में फँसाया जाता है।

ग्रामीण और शहरी विभाग की पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य यहाँ देखने को मिलता है। पुलिस आजादी के बाद अत्यंत भ्रष्ट बन बैठी है इसी भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति के कारण सामान्य जनता को हमेशा अन्याय की चक्की में ही पिसना पडता है। ग्रामीण और शहर के पुलिस थाने आज अमीरों के हाथों की गुडिया बन बैठे हैं। आज धीरे-धीरे ग्रामीण माहौल की शिक्षित पीढी में पुलिस के इस अत्याचार के बदले चेतना निर्माण होने लगी है। पुलिस की भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति यहाँ कडा व्यंग लक्षित होता है। इस व्यवस्था का मुकाबला शिक्षित युवकों से ही संभव है। यह बात लेखक ने यहाँ स्पष्ट की है।

स्वाधिनता के पश्चात स्वतंत्र भारत की सरकार ने गाँव के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का आयोजन किया परिणामस्वरूप गाँव में आर्थिकता के क्षेत्र में चेतना का निर्माण हुआ, परंतु गाँव की दलबंदी, गुटबाजी ने ग्रामों के विकास में हमेशा रोडे अटकाये। गुप्तजी के "सती मैया का चौरा" में यह स्थिति देखने योग्य है। पिअरी गाँव के आर्थिक विकास में वहाँ के गुटबाज नेता बाधा डालते हैं। देश के विकास में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ आज भी रोडे अटका रही है। अतीत के जमींदार आज के नेता है। परिणामतः ग्रामीण आर्थिक विकास उन्ही के मुठ्ठी में बंद है। "सती मैया का चौरा" में इसका अच्छा वर्णन आया है। मन्ने के मतानुसार - "तुम्हें शायद मालूम नहीं की हमारे गाँव को कितने कुओं, खाद के कंपोस्टों, बिजों, खादों, नयी तरह की हलों, मुर्गे, मुर्गियों, सांडों की सहायता मिली किन्तु इनसे ग्राम किसानों का कोई लाभ न हुआ।" मन्ने के मतानुसार यहाँ ग्राम विकास के मार्ग के रोडे नेता लोग हैं।

निष्कर्ष :- यहाँ लेखक ने नेता, सरकारी अफसर, पुलिस, पंचवर्षीय योजना आदि पर व्यंग्य किया है। इन लोगों के अन्याय अत्याचार के खिलाफ जनजागृति करके प्रगतिवादी चेतना को बढावा देने का प्रयत्न किया है। इन लोगों के होते हुए ग्रामांचलों का विकास असंभव है। यह भी यहाँ विशद किया है।

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी उपन्यासकार माने जाते हैं। उनके उपन्यासों में स्थित प्रगतिवादी चेतना यथार्थ की भूमि पर खडी है। नये समाज का निर्माण करना उनका प्रमुख दृष्टिकोण

रहा है। उन्होंने अपने आलोच्य उपन्यासों में यथार्थ का आग्रह प्रस्तुत किया है। भैरवजी ने पूंजीपति, जमींदार, शोष्क आदि पर कठोर प्रहार किया है।

सन 1975 के बाद जमींदारी प्रथा समाप्त करने की घोषणा हुअी, परंतु इससे खेतिहर मजदूरों को कोई लाभ न मिल सका, न उनके शोषण में अधिक परिवर्तन आया। आपात्काल के पूर्व भारतीय गाँवों में वेठबिगार मजदूरों की काफी संख्या थी परंतु उसके बाद की व्यवस्था में यह संख्या अवश्य कम हुअी परंतु समाप्त तो आजतक नहीं हो पायी है। जमींदारों के वंशज पीढी-दर-पीढी शोषण के नये-नये आयाम अपना रहे हैं परंतु इतना मात्र निश्चित है कि इस प्रकार के शोषण के खिलाफ अब जनजागृति लक्षित हो रही है। भैरवजी के उपन्यास इसी प्रकार की जनजागृति के अच्छे प्रमाण पेश करते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना के सबूत अनेकविध जगहों पर मिलते हैं। मजदूरों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति घृणा एवं रोष, क्रांति की भावना, मानवतावाद, नारी शोषण, सामाजिक यथार्थ का चित्रण, रूढि विरोध, साम्प्रदायिकता एवं जातीय भेदाभेद, जन जागरण की चेतना, नेता, सरकारी अफसर, पुलिस, पंचवर्षीय योजना आदि पर व्यंग, साम्यवादी भावना, बेकारी, नारी स्वतंत्रता आदि पग्रतिवादी प्रवृत्तियों के अंदर भैरवजी ने प्रगतिवादी चेतना को त्लाशने का प्रयत्न किया है। अन्याय अत्याचार का मुकाबला करने के लिए क्रांति की भावना को प्रश्रय दिया है। मजदूरों, किसानों, पीडितों, दलितों के प्रति सहानुभूति दर्शाकर मानवतावादी, विश्वमानवतावादी दृष्टिकोण को बढाया है। शोषण को मुखरता दी है। विधवा-विवाह संपन्न कराकर रूढिवाद के खिलाफ प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अभियान चलाया है। "गंगामैया" इसका अच्छा उदाहरण है। "मशाल" में अंग्रेज पुलिस के द्वारा सकीना का शोषण, "सती मैया का चौरा" में बदमिया का बलात्कार के रूप में शोषण, "नौजवान" में पति द्वारा घर में ही होनेवाला भरत की माँ का शोषण, "आग और आंसू" में बांदी नारियों का भयावह शोषण इन विविध आयामों को भैरवजी ने दिखाकर इस प्रकार के शोषण की शृंखलाओं को तोडने का प्रयत्न भी इन नारियों के माध्यम से किया है। कहीं पर असफलता मिली है। परंतु पीढी-दर-पीढी पुरूष की दासता में बंदी नारी के रूह में चेतना रूपी प्राण फूंकने का प्रयत्न करके उन्हें आजाद बनाने के प्रयत्न जरूर किये हैं।

साम्प्रदायिकता से उत्पन्न जहर की अग्नि को मिटाकर, जातीय, धार्मिक एकता पर भी बल देने का प्रामाणिक प्रयत्न "सती मैया का चौरा" में किया है। प्रगतिवादी भैरवजी राष्ट्रीय एकात्मता के पक्षधर होने के नाते वे साम्प्रदायिकता को बढावा देना नहीं चाहते है, बल्कि साम्प्रदायिकता के जहर को मिटाकर राष्ट्रीय एकात्मता प्रस्थापित करना चाहते हैं।

भैरवजी के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष पर बल दिया है। उनके पात्र नरेन, शकूर, मंजूर, मटरू, गोपी, मन्ने, योगेश, लल्लन आदि जिंदा पात्र हैं जो प्रस्थापितों के खिलाफ क्रांति की भावना को आंदोलन के माध्यम से जगाकर क्रांति का ऐलान करना चाहते हैं। शोषकों को मिटाकर शोषितों के प्रति सद्भावना दिखाना चाहते हैं। शोषित समाज के शोषण में जमींदार महाजनों के साथ दांत-काटी-रोटी का संबंध रखनेवाले सरकारी नेता, सरकारी अफसर, पुलिस, ग्राम सुधार योजनाएँ आदि पर कटू व्यंग भी करते हैं। रूस का गुणगान करके साम्यवादी भावना को वाणी देना चाहते हैं।

स्पष्ट है कि भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना कूट-कूट कर भरी हुअी है। गुप्तजी के विचार, उनके उपन्यासों में चित्रित घटनाएँ, उनके पात्र, उनके उपन्यासों का परिवेश आदि में भी प्रगतिवादी चेतना उभर उठी है। गुप्तजी ने अपने उपन्यासों में शिल्प को अधिक महत्व न देकर कलात्मकता पर अधिक जोर न देकर केवल जीवन की यथार्थ पर बल दिया है। उनका लक्ष है जनजागरण करना, जनजागरण में से चेतना प्रवृत्ति को बढावा देना, बढी हुअी चेतना प्रवृत्तियों से क्रांति का ऐलान करना, क्रांति के माध्यम से अन्याय, अत्याचार को दूर करके साम्यवाद का निर्माण करना ये सारी बातें उनके आलोच्य उपन्यासों में देखने को मिलती हैं।

भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना को तलाशते समय उनके आलोच्य उपन्यासों में युवा पीढी में पनपनेवाला विद्रोह, चरमराता हुआ आर्थिक ढाँचा, बढती हुअी बेरोजगारी, राजनीतिक दलबंदी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, मजदूर-कृषकों की अस्तित्वहीनता के दर्शन होते हैं। भैरवजी के उपन्यासों में लोकचेतना के दर्शन होते हैं। सामाजिक यथार्थ को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न भैरवजी ने किया है। कृषक-मजदूरों का जीवंत चित्र और मिल मालिक - मिल मजदूरों के द्वंद्व की गाथा ने उनके "मशाल" और "गंगामैया" उपन्यास को जिंदा बना दिया है।

भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में किसान एवं मजदूरों की लडाईयाँ, सामाजिक जागरण की प्रक्रिया आदि को विस्तृत रूप दिया है। क्रांति के लिए जनसाधारण को तैयार करना, चेतित करना उनका प्रमुख काम रहा है।

कला पक्ष की तरफ भैरवजी का दुर्लक्ष ही रहा है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष पर ही अपना सारा लक्ष केंद्रित किया है। भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना पर सोचते समय ऐसा लगता है कि यह एक सहाय लोगों की चेतना है, उनमें स्थित स्वतंत्रता को बढाने की चेतना है। भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों की चेतना वर्गगत और वैयक्तिक स्तर पर भी लक्षित होती है। वैयक्तिक या व्यक्ति चेतना के रूप में नरेन, शकूर, मटरू, पूजन, भरत, योगेश आदि व्यक्ति महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भैरवजी की प्रगतिवादी चेतना मानवीय स्वतंत्रता को अभिव्यक्त कर सकती है। इनके आलोच्य

उपन्यासों में सर्जनशीलता के दर्शन होते हैं। मजदूरों, किसानों, मिल-मजदूरों के अंतरंग जीवन की असंगतियों ने भैरवजी की चेतना को जगाया है। यह चेतना मूल्यगर्भित एवं प्रामाणिक है। भारतीय कृषक-मजदूरों के जीवन का समर्थ चित्र उसने कुरेदने का प्रयत्न किया है। इस प्रगतिशील चेतना ने पीडित मजदूर-सर्वहारा वर्ग की प्रगतिशीलता का मार्ग प्रशस्त किया है। "नरेन", "मटरू" इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं। भैरवजी की प्रगतिवादी चेतना पर मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

भैरवजी ने विषमता के विनाश के लिए क्रांति का ऐलान करके, शोषकों की कटु निंदा करके साम्यवादी समाज रचना का सपना साकार करने का प्रयत्न किया है। भैरवजी ने श्रमिकों की, पीडितों की केवल व्यथाएँ ही प्रस्तुत नहीं की है बल्कि उनमें चेतना प्रवृत्ति का निर्माण करके क्रांति की निर्मिती करने की सजग चेष्टा की है। भैरवजी के उपन्यासों में प्रगतिशील जनवादी शक्ति का संघर्ष प्रतिक्रियावादी शक्ति से गहन से गहनतर होता हुआ लक्षित होता है। "सती मैया का चौरा", इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है।

भैरवजी भौतिक जगत का अस्तित्व मनुष्य के चिंतन से स्वतंत्र मानते हैं। वे समाजवादी विषमताओं के मूल कारण को पहचानकर उन्हें समाप्त करने का उपाय भी प्रस्तुत करते है। "सती मैया का चौरा" में सहकारी खेती का उपाय इसी विचारधारा की उपज ही लगता है। वे वर्ग संघर्ष के साथ मजदूर-किसानों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। वे पूंजीवादी शासन व्यवस्था को अनुपयोगी मानते हैं। विपक्षी दलों की आलोचना करके मार्क्सवाद का समर्थन भी करते हैं। स्पष्ट है कि भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना कुट-कुट कर भरी हुअी लक्षित होती है। प्रगतिवादी चेतना के विविध आयामों को चित्रांकित करके भैरवजी ने चेतना से निर्मित क्रांति को ललकारने का प्रयत्न किया है।

000

संदर्भ :-

1. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 99
2. वही, पृ. 179
3. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्र.सं.1990, पृ. 143
4. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 29
5. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्र.सं.1990, पृ. 150
6. विजयकुमार अग्रवाल - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में सामंती जीवन, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1990, पृ. 237
7. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1959, पृ. 237
8. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सं.1957, पृ. 121
9. वही, पृ. 22
10. वही, पृ. 140
11. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां संस्करण 1982, पृ. 30
12. वही, पृ. 35
13. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 231
14. वही, पृ. 249
15. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1982, पृ. 10
16. वही, पृ. 10
17. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, षष्ठ संस्करण, 1973, पृ. 512
18. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 208
19. वही, पृ. 109
20. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 47
21. वही, पृ. 126
22. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 231
23. वही, पृ. 722
24. वही, पृ. 704-705

25. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 164-165

26. वही, पृ. 207

27. वही, पृ. 207

28. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 178

29. वही, पृ. 179

30. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 108-109

31. वही, पृ. 108-109

32. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 92

33. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 36

34. वही, पृ. 36

35. डॉ. ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं.1979, पृ. 277

36. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 202

37. वही, पृ. 238

38. वही, पृ. 237

39. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, नवम संस्करण 1973, पृ. 537

40. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 29

41. वही, पृ. 29

42. वही, पृ. 46

43. वही, पृ. 99-100

44. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 235

45. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 229-30

46. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 96

47. वही, पृ. 98

48. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 561

49. वही,पृ. 561

50. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 18

51. वही, पृ. 18

52. वही, पृ. 19

53. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 42

54. वही, पृ. 43

55. वही, पृ. 235

56. डॉ. एन.रवीन्द्रनाथ - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1979,पृ.10

57. डॉ. कमला गुप्ता - हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1979, पृ. 276

58. डॉ. वाय.बी. धुमाळ - साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्ति मूलक तुलनात्मक अध्ययन (1960-1980) अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे 1985, पृ. 174

59. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.291

60, वही, पृ. 593

61. वही, पृ. 30

62. डॉ. कमला गुप्ता - हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1979,पृ.379

63. वही, पृ. 381

64. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.51-52

65. डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा - मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्र.सं.1990, पृ. 159

66. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 236-237

67. वही, पृ. 194

68. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1959, पृ. 704

69. डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवनसत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. 1979, पृ. 281

70. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.547

71. वही, पृ. 60

000